॥ हर्षद्राये नमः ॥

श्री हर्षद माताजीका प्राकट्य और प्रताप

Book No:-
Donated by Sh. P N. Pandit
27/9/63
25

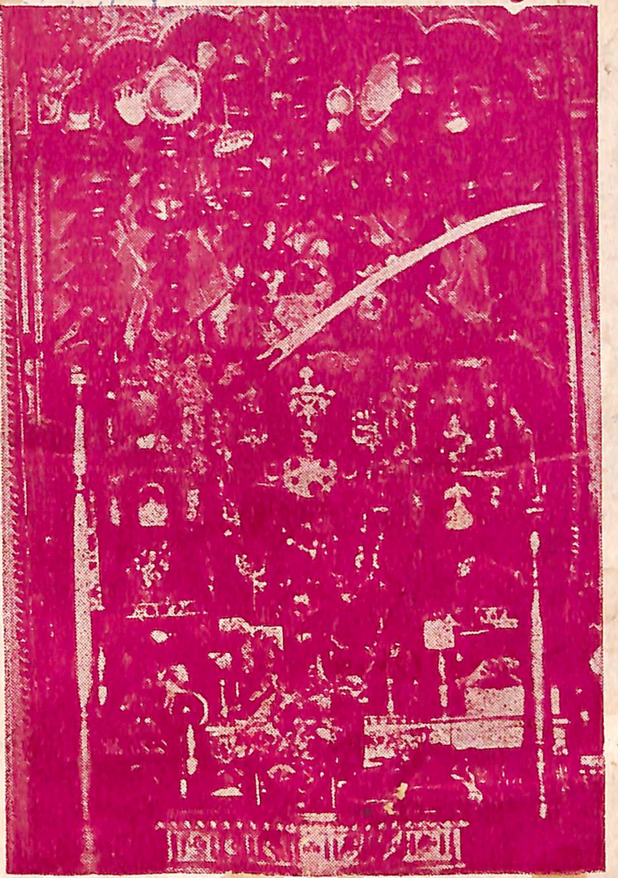

श्री हर्षद माताजीका पुजारी महंत, दोलतगिरि, हीरागिरीजी
वाया-पोस्ट जाम, कल्याणपुर.
श्री हर्षदमाताजीका मंदिर — पश्चिम भारत [सोराष्ट्र]

२०४

मूल्य :— ~~सदुपयोग~~.

॥ श्री हर्षदाय नमः ॥

—: आभार :—

सज्जनो और सन्नारीओ,

आनंदकी बात है कि इस कलियुग में भी आप अपनी श्रद्धाके बल भक्ति रहें है । संसारसे विमुख रह कर ही क्या भक्ति होती हैं ? ऐसा होता तो जनक राजाने संसारी रह कर ही कैसे प्रभु प्राप्ति की थी ? भक्तिमें महत्वता है श्रद्धाकी । चाहे पलभर ही क्यों न हो, लेकिन इस पल सच्चे दिलकी श्रद्धासे प्रभु स्मरण किया जाय तो अवर्णनीय आनद मिलता है । स्वानुभवकी बात है, इसमें मैं जादा क्या कहूं ?

माताजीके गुण गाने के लिए कौन समर्थ हैं ? यह बात तो आप इसी पुस्तकमें दीये हुए श्री माताजीका प्राकट्य और प्रतापके उदाहरणसे समझ पाओगे ।

प्रत्येक मनुष्य आशा और श्रद्धासे जीवन बीताता हैं । मैं भी आप लोंगोकी तरह ही श्रद्धालु हूं । श्री हरसिद्धि माताजी की कृपासे हो आज यह पुस्तिका आपके समीप प्रस्तुत करनेका निमित्त मात्र बना हूं । श्री हरसिद्धि माताजीकी सेवा करने का मौका देनेके लिए मैं महंत पूजारी श्री दोलतगिरिजी और छोटे पूजारीजी बलभगिरिजीका ऋणी हूं ।

अंतमे यही प्रार्थना हैं कि इस पुस्तिका को पढकर आप भी अपने जैसे श्रद्धालु और भक्तजनोंकी हरसिद्धि माताजीके प्रतापसे ज्ञात करें । माताजीकी शक्ति और प्रेम दिव्य है । इस दिव्यताको वाणीमें प्रगट करनेका कौन समर्थ है ? इस लिए मौन प्रार्थनासेही मैं माताजीके चरणोंमें अपना शीर झुकाकर प्रणाम करता हूं ।

माताजी सबकी आस और श्रद्धा पूर्ण करें यही प्रार्थना ।

संवत २०१९,
कार्तिक शुद ११, गुरुवार.

ली० आपका सेवक,
परमानंद जेठाभाई
बोरीवली-बम्बई.

यह पुस्तक छपनेकी आज्ञा पुजारी **महंत दोलतगीरीजी हीरागीरीजी** ने कच्छ मडल के **भाटीया परमानंद जेठाभाई** को दी है ।

ली० **महंत दोलतगीरी हीरागीरीजी** तरफसे
बलभगीरी दोलतगीरी

॥ श्री हर्षदाय नमः ॥

"श्री माताजी का प्राकट्य और प्रताप"

प्रिय पाठक, अिससे पहले कि आप श्री हरसिद्धी माताजी के विषय में अिस पुस्तक को पढ़े, अच्छा हो यदि आप श्री माताजी के स्थापन के बारे में जाने। यों तो बात बहुत पुरानी है, पर क्यों कि श्री माताजी आज भी प्रत्यक्ष हैं, अभी-अभी की लगती है।

सारा भारतवर्ष भगवान श्री कृष्ण की भक्ति और भावना के साथ पूजा करता है, और भगवान श्री कृष्ण को हुए हजारों बरस हो गए-श्री माताजी भगवान श्री कृष्ण की कूलदेवी थी। श्रीमद भागवत और महाभारत तो बहुत पुराने ग्रंथ हैं, उसमें भी यह प्रमाण दिए गए है कि श्री कृष्ण परमात्मा जब मथुरा में राज्य करते थे, सारे देश में असूरों का उपद्रव बहुत था। वे असूरों का निकंदन करते चले गए और अब केवल एक ही राक्षस शेष रह गया था। अिस राक्षस का नाम था शंखासूर।

यों तो हमारे भारतवर्ष में शिव और शक्ति श्री माताजी की आराधना अनादिकाल से होती आई है, किन्तु बहुत पुराने देवालय जिनकी मूर्तियों की स्थापना हुए हजारों बरस बीत गए हों फिर भी वैसी की वैसी ही हों, या जिनकी पूजा स्वयं श्री राम-श्री कृष्ण जैसे अवतारोंने की हो, ऐसे बहुत कम है। अिनमें एक है रामेश्वर जिनकी स्थापना श्री राम ने की थी और दूसरी है श्री हरसिद्धि माताजी जिनकी स्थापना साक्षात् परमेश्वर श्रीकृष्ण भगवानने की।

कहते हैं कि शंखासूर बड़ा ही शक्तिशाली था, और उसका संहार केवल भगवान श्री शंकर जो प्रलयंकर-संहार के देव हैं, उन्हीं के बस में था। यों भी कहा जाता है कि भगवान श्री कृष्ण को श्री माताजी की स्थापना करनी थी अिस लिए उनका बहुमान करने के लिए, उन्होंने अपनी कूलदेवी की उपासना की। वे अपनी अष्ट महाराणियों के साथ जा कर माताजी के मन्दिर में उनकी स्तुति करने लगे, हेतु था शंखासूर का वध। श्री माताजी जिनके भगवान श्री शंकर भी सिद्ध हैं, उनके लिए क्या असंभव है? भगवान श्री कृष्ण जैसे आराधक हों और जगतमाता जैसी देनेवाली हो तब संसार में अवश्य ही कोई कल्याणमयी घटना होनी थी।

और हुआ भी वह जो होना था। श्री माताजी प्रसन्न हुई और श्री कृष्ण भगवान से कहा—"पुत्र, आज तुम अपनी आठों महारानियों के साथ मेरी पूजा करने आए हो। मैं तुम्हारी पूजा से प्रसन्न हूं. जिस हेतु से यहां आए हो वह कहो और यथोचित वरदान मांगो।"

श्रीकृष्ण परमात्मा बोले—"हे जगत जननी, आप मेरी कूलदेवी हैं और मैं आपकी सहायता चाहता हूं। आपकी कृपा से मैं ने सभी असूरों का नाश किया है, किन्तु एक शंखासूर नाम का राक्षस मेरे से मारा नहीं जाता। वह पश्चिम भारत में-सौराष्ट्र के पश्चिम किनारे ओखा मंडल में आए हुए शंखोद्धार बेट का स्वामी है, और सारे भारतवर्ष को वह बड़ा कष्टदायी है।"

श्री शक्ति से क्या बात अजान हो सकती है? माता की उपमा तो केवल माता ही है—श्री कृष्ण जैसे पुत्र को भला और क्या कहतीं—"प्रभो! यह क्या कहा आपने? आप तो स्वयं त्रिभुवनपति हैं। आपने अनेकानेक असूरों का नाश करके भारतवर्ष को और अधिक पूण्य-भागी बनाया है। आखिर शंखासुर है कौन आपके सामने? जो आप ऐसी बात कहते हैं-मेरी आशिष आपके साथ है ही—**विजयी भवतु।**"

मां और बेटे का वार्तालाप तो बहुत चला होगा। कृष्ण बोले--"आप कहती हैं सो तो ठीक ह, किंतु हे जगतमाता, रत्नाकर सागर के पार जा कर शंखासुर का नाश उसी के राज्य मे करना मेरे जैसों के लिए भी बड़ा ही कठिन है और मुझे आपकी प्रत्यक्ष सहाय्यता की अत्यत आवश्यकता है।"

जैसा कि मां बेटे के झगड़े मे होता आया है-बेटा जीत गया-श्री माताजी ने स्नेहपूर्ण शब्दों में श्री कृष्ण से कहा कि आप मेरी महिमा बढ़ाना चाहते हैं सो मैं जानती हूं। मेरे महात्म्य को प्रगट करने की आपकी भावना कल्याणमयी है, और आपका भी महात्म्य बढे।

प्रभो ! आप जैसा चाहते हैं वैसा ही हो। मेरा आपको वचन है कि जब आप छप्पन क्रोड़ यादवों के साथ रत्नाकर सागर के तीर आवेंगे, मैं आपके बलगम पर कोयल बन कर आ बैठूगी, जिससे आप और आपका सैन्य बिना किसी श्रम के सागर पर चल सकेगा। आप बेट जा कर, शंखासुर का वध करके वहां अपने अखंड स्थान की प्रतिष्ठा कीजियेगा जिससे कलियुगमें इस बेट की यात्रा को जा आवे उनके असंख्य पापों का नाश हो और अंत में उन्हें आपके धाम की प्राप्ति हो।"

परमात्मा श्री कृष्ण श्री माताजी से वचन पा कर अपनी रानियों के साथ अपने निवास-स्थान को चले और उसी समय श्री माताजी अन्तर्धान हुए।

कुछ समय के बाद श्री कृष्ण अपनी सेना लेकर शंखोव्दार बेट को निकल पड़े और रत्नाकर के किनारे आकर श्री माताजी की प्रतीक्षा करने लगे। अितने मे अपना वचन निभाने श्री माताजी अंतरिक्ष से कोयल का स्वरूप लेकर आयी और श्री कृष्ण भगवान के बलगम पर आसन लगाया। भगवानने यह देखा और आगे दिशाओं माताजी के जय गान गूंज उठी। जय-देवी के घोष के साथ ही छप्पन क्रोड़ यादव समुद्र मे बिना किसी श्रम के चलने लगे। सच कहते है कि मारनेवाले से तारनेवाला बड़ा है, परन्तु बिना किसी नाव या जहाज के इतना समुद्र कौन पार लगाता ? आज भी यह श्रद्धा श्री माताजी के भक्तों मे पायी जाती है और माताजीने उन सभी निष्ठावान भक्तों का व्यवहार निभाना और स्थिर रख्खा है। धन्य हे भक्तों की रक्षक श्री हरसिद्धि माता।

श्री कृष्ण और उनकी सेना आगे बढने लगी। लेकिन भगवान कृष्ण को तो श्री माताजी की स्थापना भी करनी थी। आगे जा कर एक सुन्दर बेट आया वहां पर उन्होंने अपनी सेना को आराम लेने के लिए कहा। बादमे सारी सेना एक गगनचुंबी देवालय बांधने मे जुड़ गयी-मंदिर हो जाने के बाद भगवान श्री कृष्ण ने अपनी कुलदेवी श्री माताजी की मदिर मे प्रतिष्ठा की और जैसा कि आगे कहा गया है इनका नाम रख्खा गया हरसिद्धि माता। चूं कि माताजी कोयल बन कर सहायता कर रही थी, जिस बेट पर मंदिर बनाया गया, उस बेट का नाम कोइला (कोयलिया) रख्खा गया। तब से लेकर अद्यापिपर्यंत इस पहाड़ी को कोयलिया कहते हैं, और इसी नाम से वह इतिहास मे प्रसिद्ध है।

इतिहास साक्षी है कि कृष्ण भगवान यहां से शंखोव्दार बेट गए--श्री माताजी की सहायता से उन्होंने राक्षसराज शंखासूर का वध किया और उसका भी उद्धार किया। तब से वह बेट शंखोव्दार बेट के नाम से प्रसिद्ध है और वहां पर भगवान श्री कृष्ण का मन्दिर है। यह बेट श्री द्वारिकापुरी से चौदह मील दूर है. और वहां के दर्शन करने पर श्री द्वारिकापुरी की यात्रा पूरी गिनी जाती है। आज भी हजारों यात्री वहां दर्शन को जाते है और जिन्हें इस इतिहास का

ज्ञान है वे भगवान श्री कृष्ण की कुलदेवी और जिनकी प्रतिष्ठा स्वयं श्री कृष्ण ने की थी उस श्री हरसिद्धि माता के दर्शन किए बिना अपनी यात्रा पूर्ण नहीं करते।

श्री माताजी की स्थापना से ले कर अब तक तो हजारों बरस बीत गए और इस बीच के इतिहास को तो केवल लोकोक्ति का ही सहारा लेना पड़ता है। किंतु, उन सभी बातों को छोड़ कर जो इतिहास मे मिलता है और जिनके प्रमाण दिए जा सकते है ऐसी ही घटनाओं का अल्प परिचय देना यहां अनुचित न होगा। तदनन्तर मंदिर की क्या व्यवस्था रही या कितनी बार जीर्णोद्धार हुआ, इसका कोइ पता नहीं। फिर भी यह सत्य है कि वे बाहिरी आक्रमण से भारत वर्ष की रक्षा आज तलक करती आयीं–वे यहां समुद्र के किनारे पश्चिमाभिमुख रख कर जो कोई जहाज मंदिर से देखती, वह डूब जाया करता था। इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण आगे दिये जायेंगे। इस समय तो क्रमशः इतिहास देना ही उचित है।

* * *

प्रिय पाठक, आपने यदि श्री हरसिद्धि माता का इतिहास सुना है तो यह भी सुना होगा कि श्री माताजी प्रभातसेन चावड़ा का हमेशा भक्ष किया करती थी। आज का युग यह सोचेगा कि वह कैसी मां है जो बेटे को खाया करे? हम उन्हें केवल इतना कहेंगे कि वे दंतकथाएं सत्य घटना के तत्व का मुंह अवश्य नोच लेती है, फिर भी बेटा कपूत निकले और अगर मां उसको शिक्षा न दे तो ऐसी मां को आज का युग भी निभा लेगा क्या?

सौभाग्य से एक बहुत पुरानी प्रत मिल पाई है जिससे इस घटना पर प्रकाश पड़ता है। इस इतिहास के अनुसार विक्रम संवत तेरह मे मिलनपुर शहर मे (आज यह शहर केवल छोटासा कस्बा है और मीयाजी के नाम से प्रसिद्ध है–यह श्री माताजी के मन्दिर से कोई आद्य-पौन मील की दूरी पर पूर्व दिशा मे स्थित है) प्रभातसेन चावड़ा नाम से राजा राज्य करता था। यह राजपूत था और इसे सात रानियां थी, जिनमे प्रभावती जो महारानी थी वह शक्ति की परमभक्त थी। यह राजा महान् प्रतापी था, जिसका अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता हैं कि वह परमदुखभंजन वीर विक्रम का मसियाई भाई लगता था, जिस के नाम से विक्रम संवत शुरू हुआ।

राजा प्रभातसेन की महारानी प्रभावती आश्विन–कवार के महीने मे नवरात्र के दिनों भव्य मंडप सजाती और सातों बहनें-रानियां अपने मधुर कंठ से छंदों के साथ श्री माताजी के रास खेलती। मधुर स्वर और वाद्यों से आकाश गूंज उठता।

एक समय की बात है—रात्री के दस बजे होंगे—इन वाद्यों के सूर और कोमल कंठ के स्वरों की ध्वनि खाड़ी के पार कोयलिया पहाड़ी पर आसित श्री हरसिद्धि माता के कानों लगी। बहुत संभव है कि उन्हें राजा प्रभातसेन की मति ठीक करनी थी इस लिए उन्होंने ऐसा किया हो। जो कुछ भी हो सत्य है कि वे आनंदित हो कर–सोलह श्रृंगार किए–हाथ मे सुंदर कनक का गरबा लिए मंडप मे दाखिल हो कर प्रभातसेन की रानियों के साथ खेलने लगी।

चौदह भूवन और तीनों लोक जिस के खेल का पार नहीं पाए, वह स्वयं रास खेलती होगी तो कैसी लगती होगी? हमारे–आपके कल्पना के बाहर की बात है यह? बड़ा ही अद्वितिय दृश्य रहा होगा वह! है न?

झरोखे मे बैठा राजा प्रभातसेन रास देख रहा है और सोचता है, आज सात रानियों के बीच यह आठवी नारी कौन है? इस के अनुपम सौंदर्य ने मेरा मन मोह लिया है। राजाने दिमाग को बहुत कसा लेकिन सूरत अपनी जानी–पहचानी नहीं निकली। केवल इस नारी का पता लगाने

का प्रयत्न किया होता तो कोई बात नहीं थी, किंतु कामुक व्यक्ति का एक विशेष हेतु होता है जो उसे अंधा बनाए रखता हैं। सामान्य राजाओं मे युं भी दूसरों की महानता स्वीकार करने का भाव नहीं होता। कामुक व्यक्ति चाहता है कि संसार की सभी सौंदर्यतम वस्तु उसके स्वामित्व मे रहे।

खैर! रात तो जैसे तैसे रास देखने मे कटी और दिन भी इन्हीं विचारो मे व्यतित हुआ। दूसरी रात को जब माताजी आई तो राजा अंधार पछेड़ी (काली चादर) ओढ कर झरोखे मे बैठा और ज्योहो रास पूरा हुआ और श्री माताजी अपने स्थान की ओर अग्रसर हुई कि राजाने महेल से उतर कर रास्ता रोके खड़ा रहा। श्री माताजी सब कुछ जानते हुए अनजान बन कर चल रही हैं लेकिन जब राजा को हटता हुआ न देख कर बहुत क्रोधित हुई और कहने लगी—"अरे दुष्ट, चांडाल, पापी, तूं कौन हें ? मेरे चरित्र देखने क्यों खड़ा हैं? बोल, वरना अभी तुझे जला कर खाख कर दूंगी!" इस पर श्री माताजो को राजाने कहां—"आप कौन है यह बताईए ओर मेरे मन की इच्छा पूर्ण कीजिए!"

"हां हां, क्यों नहीं? तुम्हारे मनकी इच्छा तो मेरा यह खड्ग अभी पूर्ण किये देता हैं। अब भी कहती हू, संम्हल जा! बोल दे कि तू कौन हैं वरना तुम्हारी खाख फिर बोल नहीं पाएगी।" श्री माताजी के मुंहसे इन शब्दों का निकलना था और इधर उनके नेत्रो से अग्नि की ज्वालाएं निकलने लगी। राजा अब कुछ होश मे आया-डर के मारे श्री माताजी के पेरो पड़ कर गिड़गिड़ाने लगा कि-"देवि, मुझसे भूल हुई, मैंन आपको पहचाना नहीं, दास को क्षमा कर दे।"

"क्यों ? किसको क्षमा ? काहेकी क्षमा ?"

"माताजी, अपने दास पर-शरणागत पर क्षमा कीजिए। मैं आपही के आश्रय मे रहता हूं-इस मिलनपुर का राजा प्रभातसेन हूं। मेरी बुद्धि कुंठित हो चली थी-अब कहीं कुदृष्टि से नहीं देखुंगा-मेरा अपराध हुआ है-सो क्षमा नहीं कर सकती तो उचित दंड दीजिए! लेकिन अपने दास को यों न ठुकराईए।" इस तरह राजा गिड़गिड़ाया।

और फिर माताजी ने राजा को सुनाया—"राजा, तेरी मति ऐसी भ्रष्ट क्यो हुई। तुझे यह क्यो सूझा ? अगर तूं सती प्रभावती का पति न होता, तो मैं तुझे इन बातो का खूब मजा चखाती या शाप देती। लेकिन नहीं, तुझे तो दंड मिलना ही चाहिए, ताकि दूसरों को सबक मिले। आज से जब तक तू जीयेगा तब तक मैं हमेशा तुम्हारे शरीर का भक्ष किया करूंगी और बादमें तुम्हें सजीवन करके तुम्हारे महल भेजा करूंगी। तुझे हमेशां मेरे मंदिर मे आना होगा, इस सजा को भुगतने के लिए यही दंड है तुम्हारे लिए।" इतना कहते ही श्री माताजी अदृश्य हो गए और एक बड़ी ही वर्तुलाकार ज्योत आकाश मार्ग से कोयलिया पहाड़ी पर चली गयी।

इस बात का एक और ऐतिहासिक प्रमाण है।

जैसे कि आप जानते है, पहले के जमाने मे द्वारिकापुरी जाने के लिए समुद्रकाठी उपयोग किया जाता था-यही कारण था कि श्री कृष्ण भगवान शंखासूर का वध करने के लिए इसी राह चले थे। इसी तरह किसी एक दिन उज्जैन के महाबलवान परमदुखभंजन राजा वीर विक्रम द्वारिका की यात्रा को चले और रास्ते मे मिलनपुर अर्थात् आज का मियाजी-मे ठहरें। दूसरे मिलनपुर का राजा प्रभातसेन विक्रम का मसीयाई भाई होता था। रात्री के समय दोनो भाई बैठे हुए है—इधर उधर की बाते छिड़ी हुई हैं—बहुत बरसों के बाद दोनों भाई आज मिल पाए

हैं-एक दूसरे की कुशल पूछ ली, लेकिन विक्रम का मन बड़ा उदास है। उसने देखा कि भाई प्रभातसेन भलेहो अपने को कुशल बतावें, लेकिन उनका शरीर बिलकुल पीला और शक्तिहीन-सा लगता है—हो न हो कुछ बात जरूर है। उन्होंने यह भी देखा कि प्रभातसेन इनकी बात टाल रहा है और त्यों ही ये अधिक दुखी होते जाते हैं। आखिर जबरदस्ती कर ही बैठे कि—"तुम मानो न मानो, तुम्हारे शरीर में बड़ा अंतर पड़ गया है—वह बलिष्ठ और तंदुरस्त शरीर गया कहां? मुझे दाल में काला नज़र आता है, और अगर तुम कारण नहीं बतलाते तो तुम्हें झूठ बोलने का पाप लगेगा।"

प्रभातसेन अपने मुंह से अपनी करनी कैसे कहता? और वह भी वीर विक्रम को? राजा विक्रम को भी तो दुख होता कि मेरा भाई और ऐसा पतित? सो वे बात टालते रहे और जब कुछ नहीं चली तो बोल दिए—"भाई, सुनकर करोगे भी क्या? पूछनेसे या जाननेसे कुछ नहीं होने का। अपने किए मैं ही भुगत रहा हूं।"

"अगर यह कष्ट है तो क्यों कुछ नहीं हो सकता?" मैं विक्रम, दुनिया मुझे परदुख-भंजन कहती है-मैं नहीं जानता यह कहां तक सत्य है। लेकिन अवसर आने पर मैं किसी को कष्ट मुक्त किए बिना नहीं रह सकता। और मैं यह चाहता हूं कि मैं बेकार जिऊं अगर किसी एक का भी दुख अपने मत्थे ले नहीं सकता। तुम जानते हो कि यह मेरा व्रत है और तुम क्या मुझे ऐसा एक अवसर भी न दोगे जिससे मैं भाई के नाते तुम्हारा कुछ बोझ हल्का कर सकूं?" सेवा करने के लिए ऐसी दर्दभरी बिनती तो शायद वीर विक्रम ही कर सकते थे। और प्रभातसेन के लिए भी और कोई चारा न था-आखिर बोल ही दिया कि—"भाई, यह तो श्री हरसिद्धी माताजी का दंड भुगत रहा हूं और जीवनपर्यंत यह तो भुगतना ही पड़ेगा, और कोई चारा नहीं।"

"दंड! क्यों? किस बात का?"

विक्रम के इस प्रश्न पर प्रभातसेन को सारी कहानी अथ से इति तक सुनानी पड़ी और कहा—"हमेशा सवेरे सवा प्रहर दिन चढ़े मुझे माताजी के मंदिर में जाना पड़ता है और वहां उबळते तेल की कडाईमां गीरना पडता है-शरीर भुंज-सा जाता है-माताजी भोज कर लेने के बाद मुझे फिर सेसजीवन कर के भेज देती है, और यह नित्यक्रम है।"

"बस, इतनीसी बात! अब तुम आराम करो, तुम्हें कोई डरने की जरूरत नहीं। कल तुम्हारे स्थान पर मैं इस शरीर का बलिदान दूंगा।" भला, विक्रम को रोक भी कौन सकता था? और शायद श्री माताजी की भी यही इच्छा रही होगी कि उससे 'परदुखभजन' बिरुद को कसौटी पर चढाएं।

इधर विक्रम तो प्रभातसेन के स्थानपर अपनी बलि चढ़ाने के लिए निश्चयात्मक हैं और सब तैयारियां करने लगे। सारे शहर मे तहलका मच गया-एक सन्नाटा छा गया जैसे सभी कोई निर्जीव-से हो गए। विक्रमने तो खूब सुगंधी पदार्थ इकठ्ठे किए हैं-अपने सारे बदन को चीर कर उनमे ये पदार्थ भर दिए और समय होने पर प्रभातसेन की पोशाक पहने हुए माताजी के मंदिर को चल पड़े।

सवा प्रहर दिन चढ़ान चढ़ा विक्रम तो श्री माताजी के मंदीर मे पहुंच गए और बड़े ही प्रेम भाव से श्री माताजी की पूजा की। इधर ज्योंही ज्वालाएं प्रगटी और तेल डबलने लगा, विक्रम नेतो श्री माताजी का ध्यान किया और बैठ गए कढ़ाई में-सारा मंदिर सुगंधित हो उठा जैसे कि मंदिर के अणु-अणु मे महेक आ बसी हो। इतने मे विक्रम का शरीर भुन गया और कढ़ाई के

उपर तरने लगा–माताजी ने भोज किया और अंग-अंग आनंद से पुलकित हो उठा। जगत्जननी जिसका विरुद है, जो प्रभातसेन जैसो के उपर भी उपकार करती रहीं, वे विक्रम को कैसी मरने देतीं। तुरंत विक्रम को सर्जीवन किया। अरे, इतना ही नहीं, यह भी नहीं पूछा कि क्यों विक्रम ने प्रभातसेन का वेश पहन कर उनसे धोखा किया। सच है, माताजी भाव को देखती है। जब श्री माताजी ने विक्रम से वरदान मांगने को कहा तो विक्रम भी कोई कम नहीं था। उसने साफ-साफ कहा कि—"आज से प्रभातसेन राजा का भक्ष न करें और इस सेवक को आपके नित्य दर्शन का लाभ हो इस लिए उज्जैन चलें। मेरे साथ मेरा ब्यानवे लक्ष मालवदेश भी पवित्र हो जायेगा।" इसे कहते हैं परदुखभंजन! अपने साथ समस्त प्रजा के लिए पवित्रता मांगली।

आगे कहानी यों चलती है कि श्री माताजी ने ये दोनों वरदान दिये और साथ-साथ चेतावनी दी—'उज्जैन' जाते समय में तुम्हारे पीछे सात-वर्षीया कन्या का स्वरूप ले कर चलूंगी और तुम इस बात मे संशय मत रखना। अगर मुड़ कर देखा कि मैं तुम्हारे पीछे आ रही हू या नहीं अथवा ऐसी और कोई शंका की तो समझ लो कि जहां मेरी और तुम्हारी दृष्टि मिली–तुम मुझे वहां खड़ी पाओगे और उस स्थान से मैं आगे एक कदम भी नहीं चलूंगी। और मैं प्रात:काल आपके दर्शन आउंगा।" यों कह कर विक्रम प्रभातसेन के पास मिलनपुर गए। प्रभातसेन को सारी बातों से परिचित किया और वह माताजी उज्जैन चल देगी यह सुनकर बड़ा दुखी हुआ। वह रानी प्रभावती और विक्रम के साथ मंदिर गया और साष्टांग दंडवत करके स्तुति करने लगा। श्री माताजी ने राजा-रानी के भाव और भक्ति देख कर दया से दर्शन दिए और वरदान मांगने को कहा, जिस पर प्रभातसेन ने याचना की—"हे माता! मेरी अज्ञानता के कारण मैं आपको पहचान नहीं पाया। मुझे मेरे अपराध का दंड मिल गया। लेकिन मेरी प्रजा का कौनसा अपराध है, जो आप रुठ कर उज्जैनी जा रही हैं—भगवान श्री कृष्ण ने आपकी यहां प्रतिष्ठा की तब से आज तक आपके ये बालक आपके आश्रित बने हुए है। उन्हें इस तरह अपने दर्शन से वंचित न रक्खे। कृपया ऐसा कुछ कीजिए जिससे मालव देश व सुराष्ट्र–दोनों की जनता को आपके दर्शन निरंतर हुआ करे। बस, यही मेरी प्राथना है।"

यह बहुत पते की बात है, कि दोनों राजाओंने अपनी प्रजा के लिए ही––उनके सुख-शांति की रक्षा के लिए ही श्री माताजी से वरदान मांगे। और श्री माताजी आखिर तो मां ही है। उन्होंने राजा की इच्छा इस प्रकार स्वीकार की—"पुत्र! मैं तुमसे प्रसन्न हू और उज्जैन कोई दूर तो नहीं? विश्वास रक्खो, यहां मैं प्रतिदिन आउंगी और तुम्हें नित्य मेरे दर्शन हुआ करेंगे।"

अब प्रभातसेन के समक्ष एक और एक प्रश्न आ पड़ा। वह यह कि अद्यापिपर्यन्ततो श्री माताजी की पूजा देवगण और महाप्रतापी मनुष्य करते आए है, लेकिन हमेशा तो ऐसी व्यक्ति श्री माताजी की पूजा करने मन्दिर मे कहांसे होगी? तो क्या मूर्ति अपूज रहे? श्री माताजी तो सर्वव्यापक है। राजा की इस बात को उन्होंने ताड़ ली और निराकरण करने के लिए उसी समय अपनी गोदसे एक बालक को राजा के हाथों मे दिया और बोले—राजन, इसे मैंने अपनी गोदसे दिया है सो इस बालक का नाम गुसाई हरसिद्धगर रखो। बारह बरस तक इसका लालन-पालन करना, इसके बाद यही मेरी पूजा किया करेगा। इस पहाड़ी पर एक गांव बसा देना–उसका नाम 'बेटा' रखना।" सच है अकल को तो इशारा काफी है। राजाने तुरंत इन बातों का स्वीकार किया, इतना ही नहीं अपितु अपने राज्य से छह साती की जमीन भी मंदिर को अर्पण की जिससे दिये-ज्योत का खच निकल सके। इसके बाद राजारानी ने विदाय ली। विक्रम ने माताजी से

कहा कि वह सांझ को पांच बजे के आसपास अपने देवांगी अश्व पर मालवदेश जाने के लिए चल देगा। अब उसे द्वारिका नहीं जाना है। और सो श्री माताजी अपने वचन को निभाने के लिए तैयार रहें।

इन वार्तालापों में जो औपचारिक बाते सुनने मिलती है, उससे आश्चर्य अवश्य हो सकता है, लेकिन क्या यह सत्य नहीं कि अगर हमे श्री माताजी के दर्शन हो जाएं तो ऐसी ही कुछ बातें करने की अभिलाषा रखते है ?

सांझ हुई और अपने वचनतुसार विक्रम ने आगीया वैताल का स्मरण किया और अपने देवांगी अश्व।र चढे। अश्व आकाश मार्ग से जाने लगा। अभी सवा प्रहर रात्री मुश्किल से बीती होगी कि अश्व सफरा (क्षिप्रा) नदी के किनारे आ पहुंचा। श्री माताजी तो कार्यमात्र के कारण और कर्ता हैं। उनकी इच्छा के पीछे कौनसा हेतु है सो तो वही जाने ! हुआ यह कि विक्रम का जी हुआ कि जरा देखे तो सही कि श्री माताजी पिछे पिछे आ रही है या नहीं या कहीं वे पिछड़ तो नहीं गयी ? और ज्योंही उसने मुंह मोड़ करके देखता तो क्या देखा हैं ? श्री माताजी उसके बिलकुल पीछे मंद मंद हंसती हुई खड़ी है-कहती हैं—"राजन, तुने मुझपर भरोसा न रखते हुए पिछे देखा, सो अब मैं एक कदम भी आगे नहीं चलूंगी।" बादमें तो विक्रम ने बहुत बिनती की लेकिन श्री माताजी अगर अपने वचन स्वयं न निभाए तो... ...? इस समय श्री माताजी क्षिप्रा नदी के इस किनारे खड़ी थी-वहीं पर राजा विक्रम ने बड़े आलीशान मन्दिर बनवाए और श्री माताजी की स्थापना की। आज भी यह सब मौजूद है। क्षिप्रा के परले किनारे उज्जैन नगरी-विक्रम की राजधानी है और मन्दिर इस किनारे पर है।

श्री माताजी उज्जैनी में सवा प्रहर रात्री पर पहुंचे थे-सो उज्जैनी में उस समय बड़ी धूमधाम से पूजा होती है और प्रातःकाल की पूजा के बाद वे वहांसे चल देती हैं अपने असली स्थान-इस मन्दिर के लिए। वे यहां सवा प्रहर दिन बीते आ जाती हैं और सायं की पूजा होने तक ठहरती है। यहां इस पहाड़ी में एक गुफा थी-अब तो उसके अवशेष ही बाकी हैं, कहते है शायद इसी रास्ते वे आया करती थी, कई कहते हैं कि गुफा तो शयन-गृह थी। जो कुछ भी हो किंतु यह तो सत्य है कि यहां मूल मन्दिर में जब सवेरे आरती का समय होता है वे बड़ी ही तेजस्वी और जैसे कि बहुत परिश्रम करके आई हो, ऐसी लगती है। कई बार उनके मुख पर स्वेद के श्वेत बिंदु झलकते हैं, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण तो संभवत या हरएक यात्री दे सकता है।

हां, तो आगे घटना यों घटी कि राजा प्रभातसेन ने उस गुंसाई बालक को बारह बरस तक पाला और धूमधाम से उसको मंदिर का महंत बनाया गया-इसी कोयलिया पहाड़ीपर एक गांव बसाया गया जिसका नाम 'बेटा' था और पुजारी हरसिद्धगिर व माताजी के सेवकों के लिए वहां कई मकान भी बनवाए गए। लेकिन इतने से श्री माताजी को कहां चैन पडता ! उन्हें तो स्वयं दिए हुए बेटे-अपने पुजारी की महत्ता बनानी थी।

इसी कोयलिया पहाडपर अंतरिक्ष में एक नगर था, जिसका नाम था गांधवी। और वहां गंधवा कर के एक शापित राक्षस राज्य करता था। एक दिन इस राक्षस ने बेटा गांव की एक-एक ईंट-पत्थर तक समुद्र में फेंक दिए। भला वह मनुष्य का वास कैसे सहन कर पाता ? या क्या पता कि श्री माताजी ने उसे मोक्ष देने की सोची थी। अंत में पुजारी ने तो अपने एक मात्र आश्रय श्री माताजी से फरियाद की--"मेरा सारा गांव समुद्र में डुबो दिया गया-असुरों की अन्तरिक्ष में भी रखवाली करती है तो शूरवीर किस जोर पर न्याय कर पायेंगे। मुझे अपनी कोई चिंता नहीं, मेरे लिए तो तेरा मंदिर मेरा घर और मेरा मंदिर तेरा घर—लेकिन सोचता हूं

कि कहीं आनवाले तेरी लीला समझ न पाए तो? बुद्धिवादीओं का क्या ठिकाना? वे तो प्रस्तुतिकरण के लक्षण खोजते हैं, अभिव्यक्ति के हेतु से उनका कोई नाता नहीं। क्या पता वे कहदें कि जिस बालक को स्वयं श्री माताजीने अपनी पूजा के लिए अपनी गोद मे पैदा किया, उस के गांव की ही रक्षा किसी से नहीं हो सकी। माता! मैं यह नहीं सह सकूंगा।"

इसके बाद जो घटना घटी वह संक्षेप मे यों है।

श्री माताजी ने, सिंहारूढ हो कर गंधवा राक्षस और उसके समस्त कुल का नाश किया। अपने भक्तों के लिए वह कैसी प्रत्यक्ष है इसका प्रमाण बना रहे इस लिए वे उसी गांधवी नगरी को अन्तरिक्ष से बाहर लाए और पूजारी हरसिद्धगर को वहीं रहने के लिए कहा। बेटा के कुछ अवशेष अब भी गांधवी मे मिलते हैं। आज भी वह गांव गांधवी के नाम से ही प्रसिद्ध है, जो कोयलिया पहाडी से आध–मील की दूरी पर है, और पूजारी के वंशज अब भी वहीं रहते है। गांधवो से थोड़े दूर चाचलाना करके एक गांव है वहां पर श्री माताजी ने गंधवा राक्षस का वध किया था। वह स्थान आज भी मौजूद है और वहां गंधवा असूर को खांभी भी है।

पुराने देवालय (नया देवालय क्यों बंधवाया गया आदि बातें आगे लिखी जायेंगी। मे आज भी वह तेल का कुंड है जिसमे राजा प्रभातसेन के शरीर को तला जाता था, लेकिन ये सब तो हुई दो हजार वर्ष का पुरानी बातें।

आपको आगे बताया जा चुका है कि श्री माताजी मंदिर मे पश्चिमाभिमुख किए हुए है—सो तो है पुराने मंदिर की बात। इसके बाद श्री माताजी को प्रसन्न करके भक्त जगडूशाह उन्हें पहाडी के नीचे नया मंदिर लिवा लाए। यह भी ऐतिहासिक बात ही है, सो आगे लिखी जाएगी ही, किंतु यहां कहना यह था कि पहाड़ी स्थित पुराने देवालय से कुछ दूर सागर के किनारे एक मीठे पानी का कुंड है और कुछ अवशेष हैं एक शिवालय के इस शिवालय का नाम था सुदेश्वर महादेव और कुंड सुदासामन्ठ कुंड के नाम से प्रसिद्ध हैं।

हमने बहुत छानबीन की कि इनके विषय मे अधिक प्रामाणिक जानकारी हो, लेकिन छोटे भक्तों के इतिहास तो केवल दंतकथाओं तक ही सीमित हैं। कहते हैं कि यह कुंड और महादेव का मंदिर मारवाड के एक छोटे से राज्य के ठाकुर श्री सुदाजी व उनके प्रधान श्री सामन्ठ ने बनवाया। हमे अगर पता लगाना था तो केवल इस बातका कि आखिर ये भक्त किस अरसे मे हुए—अगर इतिहास मे उन्हें याद नहीं किया गया तो इससे उनके भक्त होनेपर और उनके बनवाए गये इन कुंड और मंदिर पर से कैसे आंख फेरलें? यह तो सत्य हैं—आज भी ये स्थल मौजूद हैं। और सैंकडों बरसों से भक्तजन इन दोनों–राजा और प्रधान की–बातें कुछ यों करते हैं।

मारवाड के किसी एक छोटे से राज्य का ठाकुर श्री सुदाजी अपने कुटुंब व प्रधान श्री सामन्ठ के साथ श्री द्वारिकापुरी जी की यात्रा को चले थे। वहांसे लौटते उनकी इच्छा श्री भूलद्वारिका के दर्शन करने की इच्छा हुई सो वे श्री मूलद्वारका (यह तीर्थस्थान पोरबंदर राज्य के गांव विशावाड़ा मे है और श्री हरसिद्धी माताजी केवल ६ मील पर है) कीं ओर चल पड़े। नौका धीरे धीरे चल रही थी और समन्दर शांत था। पर श्री माताजी को न जाने क्या चमत्कार दिखाना था कि उनकी नौका ज्योंही मंदिर की सीध मे आने लगी, समन्दर मे बड़े जोरों कीं भरती आई–मौजे आसमान से बात करने लगे। ठकुरानी का जी घबराने लगा और नाव को घसीट कर श्री माताजी के बिलकुल सीध मे–सागर किनारे ला कर रख दिया। इधर थोड़ी देर के बाद तेज़ धूप निकली, उधर ज्वार चालू है। रानी को बड़ी प्यास लगी, राजा सोचने लगा इधर मीठा पानी

कहां मिलेगा—जिधर देखो तो समन्दर ही है, खारा पानी। परन्तु फिर भी वह रानी सुनयना के लिए पानी लाने के लिए चल पड़ा।

सच कहते है कि देनेवाले देता हैं तो छप्पर फाड़ कर देता है। राजाने क्या देखा कि थोड़े दूर चलने पर ही एक सुंदर कुंड ह और उसमें निर्मल मीठा पानी है। राजा अत्यन्त खुश हो उठा। वह पानी भरने को झुका कि कहीं से आवाज आई—" मां "। इधर उधर चारों ओर देखा, कहीं भी कोई मनुष्य नजर नहीं आता, तो फिर यह किसकी पुकार थी? ज्योंहि फिर से पानी भरने के झुकता है, दुबारा आवाज आई—"मां"। अब कि उसने देखा–एक तेजस्वी बाला सामने खडी है और उसे कह रही है—" राजन्! इस कुंड मे से पानी मत भरना। यहां का पानी पीने को किसी का अधिकार नहीं, यह कुंड तो श्री हरसिद्धि माता का है।

राजा सुदाजी—" देवी, आप कौन है? और इस कुंड का पानी पीने में क्या आपत्ति है, सो कृपया मुझे कहिए।"

श्री माताजी—" राजन्, मैं स्वयं ही हरसिद्धी हूं और यह कुंड मेरा ही हैं।"

राजा सुदाजी—" माता, मैं तो आपका दास हूं। मुझ पर कृपा करो और एक झारी पानी लेने दो। मेरी पत्नी सुनयना को बड़ी ही प्यास लगी हैं और वह प्यास से बड़ी ही व्याकुल है।" लेकिन श्री माताजी ने कह दिया कि किसी भी सूरत पर इस कुंड से पानी नहीं मिल सकता। अब राजा की आंखों मे पानी भर आया और वह बोला कि क्या कोई भी ऐसी सूरत नहीं जिससे वह पानी ले जा सकता है।

श्री माताजी मुस्कुराई—" हां एक सूरत हो सकती है। यदि तुम एक झारी भर लहु मुझे इसी समय अर्पण कर सके तो मैं पानी लेने दूंगी। इतने सुनतेही सुदाजी ने मेंट से कटार निकाली और अपनी जांघ चीर दी, लेकिन आश्चर्य, लहु की एक बुंद तक न निकली। दूसरा वार किया पर वही हालत। यह क्या? बाद में वह अपने एक के बाद एक सभी अंग काट रखने लगा, लेकिन लहु का नाम तक नहीं निकला। आखिर, ज्योंही वह 'हें माता' कह कर अपनी गरदन पर कटार लगाने गया तो श्री माताजीने उसका हाथ थाम लिया और बोली—" राजन, मैं तुम पर प्रसन्न हूं, मैं तो किसी चीज की भूखी हूं और नहीं मुझे तुम्हारे खून की प्यास हैं। तुम बडी खुशी से पानी ले जाओ और अपनी पत्नी की प्यास दूर करो–तुम और कोई वरदान भी मांग लो–तुम जो चाहोगे वह तुमको मिलेगा।"

भला, एक भक्त को क्या चाहिए? वह दौलत जैसी माया क्यों कर मांगता–उसने तो श्रेष्ठ बात ही चुननी थी, सो ही हुआ—"श्री माताजी? मुझे अपने धाम मे हमेशा के लिए रखे यही मेरी इच्छा है।"

"तथास्तु" कह कर श्री माताजी ने कहा—राजन, यहां पर मेरे भक्तों को मीठे पानी का बडा कष्ट होता है सो तुम इस स्थान पर एक कुंड बनवाना जिससे लोगों को मीठा पानी मिल सके।" तदनन्तर श्री माताजी अदृश्य हो गयी। सुदाजी ने पानी की झारी भरी और देखता है कि अब वहां से कुंड भी अदृश्य हो गया। राजा अपनी रानी के पास आया और उसे सारी बात सुनाई। प्रधान सामन्ठ ने तुरन्त ही वहां पर कुंड बनवाने की तैयारियां की और जिस जगह पर से सुदाजी को पानी मिला था, ठीक उसी स्थल एक बडा कुंड बनवाया गया। आज भी यह कुंड मौजूद है और इस कुंड का नाम 'सुदा-सामन्ठ कुंड" हैं। समन्दर की लहरों से यह कुंड कोई दस गज की दूरी पर है, फिर भी मीठा पानी ही उसमे से निकलता है। इसे श्री माताजी

की लीला न कहे तो और क्या? सुदाजी ने एक और कुआ भी खुदवाया, वह भी कोयलिया पहाडी की तटाई मे-ठीक मंदीर के सीधमे, समन्दर के किनारे हैं-राजाने इस कुए पर दो आम के पेड़ लगाए थे जो अद्यापिपर्यंत विद्यमान है। इस कुएमेसे भी मीठा पानी ही निकलता हैं।

जिस स्थान पर श्री माताजी ने राजा को दर्शन दिए थे उस जगह राजाने एक विशाल मंदिर बनवाया और वहां श्री माताजी की मूर्ति की स्थापना की तथा अपने इष्ट देव श्री शंकर की भी स्थापना की-इस सुदेश्वरी माताजी व सुदेश्वर महादेव का स्थान कुंड से बिलकूल सट कर के है। आज तो इस मंदिर की केवल नींव दिखाई देती है। पर खंडहर से जितने भी पत्थर विद्यमान है वे कला-कारीगरी की दृष्टि से भी उत्तम नमुने हैं। स्थापत्य कला की दृष्टि से ये बहुत पुराना है और लगता है कि यह कमसे कम डेढ़ दो हजार वर्ष पहले बनवाए गए होंगे।

चुनांचे हमे श्री माताजी के प्राकट्य से लेकर अब तक के श्री माताजी के मदिर का इतिहास यथासंभव संक्षिप्त रूप मे देना हैं, यहां केवल कुछ एक बाते ही लिखेंगे जिनका प्रमाण इतिहास मे मिलता है। यदि ऐतिहासिक दृष्टांत भी देने लगे तब भी न जाने यह पुस्तक बहुत बडी हो जायेगी और हमे यह भी ज्ञात है कि श्रद्धालु-भक्तों को दृष्टांतो से कुछ लेना देना नहीं, इस लिए ऐतिहासिक होते हुए भी कई दृष्टांतो को हमे छोड देना पडेगा। पाठकगण, हमे इस बात के लिए क्षमा करें।

जैसा कि आप जानते है, राजा प्रभातसेन के समय से गुंसाई हरसिद्धगर के वंशज-उत्तराधिकारी ही यहां के पूजारी है पहले ये ब्रह्मचारी रहा करते थे-महंत के बाद उनका शिष्य महंत बनता था और यह क्रम जगडूशाह जो श्री माताजी के अनन्य भक्त थे उन्होंने ही तुड़बाया-उन्होंने स्वयं अपने लिए निर्वंश मांगा था और पूजारी को गृहस्थी बनवाया-अजब है माताजी की लीला, जिन्हें हम अपनी अल्पता के कारण समज नहीं पाते। कहना यह था कि न तो पूजारी हरसिद्धगर की वंशावली मिल पाती है और नहीं इस बात का कोई ठोस प्रमाण मिलता है कि प्रभातसेन राजा का वंश कहां तक चला। इतिहास मे नजर करते हैं तो यह कोयलिया पहाडी प्रभातसेन के ही राज्य मे थी और २००० वर्ष पहले प्रभातसेन की दी हुई जमीन अब तलक पूजारीजी के ही हस्तक है-इस बीच ५०० साल तक किसका राज्य था और क्या क्या बातें हुई, इसका पता नहीं। जो कुछ भी हुआ लेकिन सबों ने श्री माताजी के प्रभाव का स्वीकार किया ही था, वरना वे जमीन छीन लेते। राजा प्रभातसेन के पांच सौ वष के बाद यह स्थान पोरबंदर राज्य के अंतर्गत गिना गया जिसका स्थापक शैलकुमार जेठवा करके रजपूत था। आज भी इसके वंशज राजा कहलाते हैं और पोरबंदर के राजा हैं। इस शैलकुमार को यहां के राजा बनवानेवाली श्री माताजी ही थी और इनके इतिहास से इस बातके प्रमाण मिले है यह कहानी इस प्रकार है--

विक्रम संवत ५३७ मे श्रीनगर मे जेठवा शैलकुमार राज्य करते थे। उनका राज्य पंजाब और काश्मीर तक फैला हुआ था। किसी कारण वे राज्य खो बैठे और दुश्मन उनके पीछे लगे रहे। उन्हें कोई आश्रय देता नहीं था और इनके मन मे फिर से राजा बनने की भावनाए प्रबल हो रही थी। इस तरह वे घुमते-घामते सौराष्ट्र मे आए। इन दिनों शैलकुमार की आयु २०-२१ बरस की थी। चिंतातूर राजकुमार इस प्रकार बरड़ा पहाड की तराई मे आ पहुंचे और एक सुंदर व रमणीय स्थान देख कर वहां अपने अश्व को पेड़ के तनेसे बांध कर आराम करने बैठ गए। सच कहते हैं कि जितना अधिक परिश्रम, निद्रा भी उतनी गाढ होती है। राजकुमार बडी गाढ निद्रा मे सो गए। जब सोकर उठे तो देखा की एक अलौकिक युवान श्वेत वस्त्र धारण किए खडा हैं। राजकुमार हैरत मे रह गया, उसने सोचा हो न हो यह युवान पार्थिव शरीरी नहीं। लेकिन

वह क्षत्रिय बालक था। उसने बिना डर के इस युवान से उसका पता पूछा जिस पर उस युवकने कहा—"आपको पूछने की कोई आवश्यकता नहीं। जैसे आप मुसाफिर हैं, वैसे ही मैं भी एक मुसाफिर ही हूं।" अब शैलकुमार ने सोचा कि यह युवक अवश्यही कोई चमत्कारी पुरुष हैं और सो उसने अधिक बातें नहीं पूछी। थोडी देर बाद उस युवकने पूछा-चिलम पीओगे क्या?" राजकुमार ने कहां-" मेरे पास सूका (तमाखू) नहीं है।"

श्वेत वस्त्रधारी युवक—" कोई बात नहीं, मेरे पास तमाखू है।" और वह चिलम भरने लगा। इतने मे राजकुमार जलानेके लिए छोटी लकड़ियां खोज कर इकठ्ठी की और उसे जलानेकी व्यर्थ चेष्टा करने का दिखाव करके-पेट से कटारी निकाल कर-पिछे आकर चुपके से उस युवक के बालोंकी एक चोटि काटली। तुरंत युवक चिल्ला उठा—"यह तुमने क्या किया? मुझे यह चोटि वापिस कर दो।"

शैलकुमार—" मैं अब इसको नहीं देने का। क्यों कि मुझे यह जानना है कि आप कौन हैं।"

युवक—" भाई, मैं तो भूत हुं-इस पर्वत पर रहती समस्त भूतावल का मैं राजा हुं और मेरा नाम बाबरा भूत है।"

शैलकुमार--" अच्छा हुआ कि आपसे मुलाकात हुई-मैं ऐसे ही किसी मित्र की खोज मे था, अब तो मैं इस चोटि को किसी सूरत पर आपको नहीं लौटाउंगा।"

युवक—'ऐसा न कहिए, आप कहिए सो कार्य मैं कर दू। पर इस चोटि को आप लौटा दें।"

शैलकुमार--" मेरी इच्छा बडा राज्य पाने की है सो उसमे आप मुझे सहायता करें।"

युवकने अपनी लाचारी दिखाई कि यह उसके बस की बात नहीं पर एक और इलाज हैं। शैलकुमारने पूछा वह कौनसा? तब युवकने बताया कि-" सामने की पहाडी पर जो ध्वजा लहरा रही है वहां पर मंदिर स्थित है, जहां श्री कृष्ण भगवान की कूलदेवी श्री माताजी बिराजती है-भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं इनकी स्थापना की है और वे श्री हरसिद्धी माताजी के नामसे प्रसिद्ध हैं। यदि उन्हें आप प्रसन्न करें और यदि वे आपकी सहायता करना चाहें तो आपकी इच्छा अवश्य पूरी हो सकती है।"

शैलकुमार--" आपका कहना तो ठीक है, लेकिन इस खाडी के पार कैसे जाया जाय।" इस पर उस युवकने-बाबरा भूत के नाम से जिसे पाठक जानते हैं-एक चादर दो और राजकुमार से कहां कि वह चद्दर को सागर के पानी पर बिछा देगा तो वह डूबेगी नहीं अपितु उसे कोयलिया पहाडी तक पहुंचा देगी। शैलकुमारने अब बाबरा को उसकी चोटी लौटा दी और चद्दरने नाव का काम किया-माताजी का स्मरण करते हुए वह इस पार पहुंचा और तुरंत ही कोयलिया के शिखर पर स्थित इस मंदिर मे श्री माताजी के ध्यान मे बैठ गया।

प्रिय पाठक! श्री माताजी की लीला अपरंपार है, उनकी गति का पार कोई क्या पाएगा? इस शैलकुमार को क्या पता था कि माताजी उसे फिर बाबरा भूत की ही चोटि काटने को कहेंगी। अंतर केवल इतना कि चोटि श्री माताजी के खड्ग से ही काटी जाए या यह भी तो संभव है कि श्री माताजीने बाबरा भूत के ज़रिए शैलकुमार को अपने पास बुलाया और यहां की प्रजाको जिन्हें उस समय एक पराक्रमी और सुशील राजा को आवश्यकता थी, एक उदार और

शूरवीर राजा का योग कराना था। खैर, इन बातों का निर्णय करना तो हम पाठक पर ही छोड देते हैं-यहां हमे केवल सत्य घटना से संबंध हैं।

तो, शैलकुमार कोयलिया पहाडी की टोच पर-मंदिर मे आया-श्री माताजी की प्रभावशालीनी मूर्ति और मंदिर की अलौकिक शोभा देख कर वह गदगद उठा-मंदिर मे मूर्ति के ठीक सामने हवन का कुंड हैं वहां वह एकाग्रचित हो कर श्री माताजी के ध्यान मे बैठ गया। सामने से समन्दर की शीतल हवा लहरा रही थी-सागर के मौजे उछल उछल कर जैसे श्री माताजी के चरण छूने को लालायित हों, ऐसा सुन्दर दृश्य बन पडता है, यात्रियों को तो इस बात का निजी अनुभव है ही। प्रकृति पूर्ण रूप से खिल उठी थी और मानो राजकुमार को लुभा रही थी जिससे उसका ध्यान खंडित हो। पर कहते हैं कि भक्तात्मा का मन अपने लक्ष्यबिंदु से हटता नहीं, चाहे कुछ भी परिणाम आए। इसी श्रद्धा और एकाग्रता पर ही तो संसार कायम है।

मंदिर की शोभा और श्री माताजी की मूर्ति के दर्शन से ही राजकुमार का मन निर्मल हो गया था। इस भूर्ति की प्रतिमा ही कुछ ऐसी है कि देखते ही मन के सारे पापों का नाश हो जाता है, न जाने क्यों? लोहे को जैसे पारसने छू लिया और तुरंत ही सारा लोहोपन जाता रहा-या यों कहो कि ऐसी फिटकरी लगी कि पानी का गंदलापन दूर हो गया।

राजकुमार एक पग पर खडा हुआ हैं और स्वच्छ व एकाग्रचित से श्री माताजी का स्तवन कर रहा है। इसके बाद जप शुरू हुआ। सात-सात दिन और सात-सात रातें इस प्रकार बीत गए, पर मझाल हैं कि एक अंग भी हिले। दर्शनार्थी इस भक्त के तप पर चकित हैं, सभी कोई अंतर से आशिष देते हैं कि श्री माताजी इस युवक पर प्रसन्न हो। जैसा कि आगे हमने लिखा है—क्या पता श्री माताजी उसकी कसौटी कर रही थी या स्वयं ने ही इसे काश्मीर से यहां तक खींच लिया था? जो भी हो, भक्तों के आशिष ने काम किया, श्री माताजीने भी लीला की, शैलकुमार की श्रद्धा ने फल दिया-जो कुछ भी कहें, बात एक ही है—श्री हरसिद्धि बड़ी ही प्रत्यक्ष हैं और भक्तों के कष्ट दूर करनेवाली है। यकायक मंदिर मे भयानक गर्जना हुई और सारा मंदिर अद्वितीय-अनुपम प्रकाश से झिलमिला उठा-राजकुमारने देखा कि इस ज्योति मे एक अति ही मनोरम्य, शांत और अलौकिक सौंदर्य से विभूषित मूर्ति देदीप्यमान हैं—इस मूर्तिने अनुपम आभूषण धारण किये हैं, नेत्र लाल है, इनके शृंगार का क्या कहना-बडे बडे कवि की वाणी भी इस रूप का वर्णन करने में असमर्थ हैं-बडे बडे योगी और ज्ञानी केवल नेति नेति कह कर ही चूप हो गए है-इस अनिर्वचनिय शक्ति ने अष्टायुध धारण किए हुए हैं—साक्षात् शक्ति को सन्मुख देख कर राजकुमार मौंचक्का-सा होकर श्री माताजी के चरणों मे गिर पडा--"हे माताजी! दास पर अनुग्रह कीजिए! मैं आपका भक्त हुं, बडे बडे ज्ञानी-मुनी भी आपका तेज नहीं झेल पाते, तब मैं एक संसारी किस बिसात मे हुं। अपनी माया समेट लीजिए ताकि बेटा अपनी मां के दर्शन कर सके।"

कहते हैं कि श्री माताजीने अपने दिव्य स्वरूप का दर्शन इस लिए कराया जिससे भविष्य मे यह राजा अपनीं मनमानीं या जुल्म न करे। आप भी सोच सकते हैं कि जिसके पास श्री माताजी जैसे आद्यशक्ति का खड्ग हो, वह चाहे तो क्या नहीं कर सकता? भस्मासूर जैसे राक्षसोंने दैवी आयुध पा कर तहलका मचा दिया था-और ऐसे कई प्रमाण इतिहास मे सुविदित है।

श्री माताजी शांत स्वरूप धारण करके बोली--"पुत्र, तुमने इस छोटी आयु मे ही उग्र तप से मुझे प्रसन्न किया है, मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हुं। उठो, तुम पराक्रमी जेठवा राजाओंके

वंशज हो। तुमसे अधिक शक्तिशालीओंने तुम्हारा राज छीन लिया तो क्या हुआ? मैं तुम्हारी इच्छा जानती हूं। तुम्हें मेरा वरदान है कि तुम इनसे भी बड़े महाराजा बनोगे–तुम बहत्तर सौ गांव के अधिपति बनोगे–तुम कर्म करने को उद्यत हो इससे मैं बडी ही संतुष्ट हुई हूं–अपनी अभिलाषा पूर्ण करने के लिए तुम निकल पडो. लो यह मेरा खड्ग! इससे तुम जिधर से गुजरोगे, तुम्हारी जय होगी। यहां से तुम जिस तरफ से आए उसी ओर लौटना, बरडा पहाड की तराई मे एक बडा पुराना बरगद का पेड है वहां जा कर आराम करना। थोडी देर के बाद वहां बाबरा भूत किसी युवक के रुप मे आएगा। अब कि उसकी चोटि इस खड्ग से काट लेना जिससे वह हमेशा तुम्हारा कहा किया करेगा। और लौकिक दृष्टि में तुम उसकी मदद से इस इलाके महासमर्थ बलवान राजा बनोगे।"

सच है लौकिक दृष्टि से–श्री माताजी जैसी मां को भी व्यवहार निभाना ही पडता हैं। अगर ऐसा न होता तो संसार कैसे टिक पाता? आज भी कमाने के लिए, हाथ–पैर या धन या श्रद्धा–भजन कुछ न कुछ काम मे लगाना ही पडता है। समस्त ब्रह्मांडो का जो नियमन कर रही है, वह स्वयं यदि इन व्यवहारों को–नियमों को तोड दे यह कैसे संभव है?

शैलकुमार—"जैसी आज्ञा! मुझे राज्य मिलते ही लौट कर आपको पूजा करने यहा पर आउंगा।" राजकुमार इस प्रकार कह कर श्री माताजी का खड्ग और आशिष लेकर बगलमें उस चद्दर को दबाए बताए हुए रास्ते चल पडा। चद्दर के सहारे समन्दर पार करके अपने अश्व को खोल कर बरडे की तराई मे आया। श्री माताजी के कथनानुसार बरगद का पेड आया जहां वह अश्व से उतर कर लेट गया। आगे क्या हुआ सो तो आप भी समझ गए होंगे। ठीक उसी प्रकार सब बाते हुई।

पहले की तरह ही बाबरा भूत युवक के स्वांग मे आया–अंतर केवल स्थल का था। पहले थे मियाजी (मिलनपुर) मे मिले थे, अब कि बरडा पहाड की तराई मे बरगद के पेड के नीचे मिले। बिलकुल पहले की तरह ही बाबरा भूतने चिलम की बात छेडी, राजकुमारने कहां सुका नहीं है। भूतने सूका निकाला और चिलम भरने लगा। शैलकुमारने चिलम सुलगाने के लिए लकड़ियां इकट्ठी की और जलाने का बहाना करते हुए चुपके से पिछे आ कर बाबरा की चोटी श्री माताजी के खड्ग से काट दी।

अब बाबरा भूत शैकुमार को वश हो गया। तुरंत ही उसने समस्त भूतों को बुलाया और एक अति ही सुन्दर और सुरक्षित नगर बनाने मे वे सब जुड गए। इस शहर का नाम घुमली रख्खा गया। उपरोक्त कथन के सभी प्रमाण इतिहास मे पाए जाते है। आज भी यह घुमली गांव मौजूद है। शैलकुमार जेठवा का राज्याभिषेक घुमली मे विक्रम संवत् ५३७ मे आश्विन शुक्ला १० सोमवार, दशहरे के दिन हुआ था। श्री माताजी के वचनानुसार उसके राज्य मे ७,२०० गांव थे।

राज्याभिषेक होने के बाद तुरन्त ही वह श्री माताजी की पूजा करने आया और श्री माताजी की सेवा मे चांदी की दिपिका मे एक अखण्ड ज्योत रख्खी जो आप आज तक श्री माताजी और उनके सेवक की गाथा कह रही है। कालांतर मे जेठवाओं की राजधानी पोरबंदर लायी गयी–ये अब राजा कहलाने लगे। कई युग बीत गये, कोई एक हजार बरस के बाद पोरबंदर एक छोटा राज्य होता चला फिर भी यह सत्य है कि यदि संसार के इतिहास को लिया जाय तो भी ऐसा कोई भी खानदान नहीं मिलेगा जिसने एक साथ हजार पंद्रहसो बरस एक

जगह राज्य कर पाया हो। हमे यो तो झंझट मे उतरने का कोई कारण नहीं, केवल माताजी की कृपा का ही आपको अनुभव कराना हैं।

गुजराती मे बरगद के पेड को 'वड' कहते हैं। जिस स्थल पर शैलकुमारने बाबरा भूत को वश किया था वह वड' अब भी विद्यमान हैं और वह भाणवड गांव मे अब भी इस घटना की सच्चाई पुष्टि करते हुए खडा है। इस 'वड' को अब भी 'भूतवड' कहते है और लोग उसको मनौतियां मना अपनी श्रद्धा के अनुकुल फल पाते रहते हैं।

कई सौ बरस हो गए उपरोक्त घटना को–यह कोयलिया पहाडी पोरबंदर राज्य के अन्तर्गत ही थी, और तब से लेकर अद्यापिपर्यंत जेठवाओं (पोरबंदर के राजाओं) की ओर से श्री माताजी के मंदिर मे एक अखण्ड ज्योत प्रकाशित है। यह ज्योत श्री मूर्ति के दख्खन मे विद्यमान है और उत्तर से जो अखण्ड ज्योत है वह श्री जाय की ओर से झगमगा रही है। जामनगर राज्य के संस्थापक श्री जाय विभार्जीने इस ज्योत को अपने शुभ हस्तोंसे प्रकट किया था, इस बात को कई शताब्दियां हो गयी। वर्तमान महाराजा श्री जामसाहेब भी इस ज्योत को जगमगाए हुए है। इतना ही नहीं अपितु वर्तमान जामसाहेब महाराजा श्री दिग्वीजयसिंहजीने मंदिर के पुजारियों का वर्षासन लगा दिया है और नए मंदिर के मकान मे भी बहुत कुछ सुधार किया हैं। यह कोयलिया पहाडी पिछले कई सौ बरसों से श्री महाराजा जामसाहेब के राज्य के अन्तर्गत हैं और महाराजासाहेब श्री माताजी को बडी सेवा करते हैं।

प्रिय पाठक! अपने आगे पढ़ ही लिया है कि श्री माताजी के दो मंदीर हैं- एक पुराना जो पहाडी के शिखर पर पश्चिमाभिमुख हैं और दूसरा नीचे जो पूर्वाभिमुख हैं। अभी अभी उपर भी नए मंदिर का जिक्र हुआ हैं सो आप और असमंजस मे पड गए होंगे कि भई, आखिर दो मंदिर क्यों? पुराना मन्दिर तो अब भी मौजूद हैं—बडी सुन्दर जगह हैं. फिर मन्दिर को नीचे क्यों लाया गया? आगे एक जगह यह भी बात आइ हैं कि यहां के पुजारी फक्कड हुआ करते थे लेकिन आजकल वे ससारी हैं, सो क्यों? इत्यादि।

पाठक, अब हम आपकी शंका का समाधान करेंगे। शायद ही कोई ऐसा भारतवासी होगा जिसने दानवीर शेठ जगडूशाह का नाम न सूना हो? तवारिख के हिसाब से दे पंद्रहवी सदी मे हो गए। श्री जगडूशाह कच्छ प्रांत के बहुत बडे शाह सौदागर हो गए। पहले के जमाने मे जब स्टीमरे नहीं थी, बडे बडे सढवाले जहाजों से परदेशों के साथ व्योपार किया जाता था। श्री जगडूशाह के पास ऐसे हजारों जहाज थे और उसकी गिनती देश के इनेगिने अबजोपति मे होती थी। आखिर इतनी दौलत उसके पास आई कहां से? व्यौपार में कमाया क्या? पैतृक सम्मति थी क्या? तो इसका उत्तर यही है कि उसकी माली हालत पहले अच्छी नहीं थी। उसके पास केवल २–३ छोटी किश्तयां थी और वह उन्हें किराए पर चलाता था। अपने पुरुषार्थ वह सात जहाजों का स्वामी हुआ और अब वह अपना ही माल भर कर देश–परदेश व्यापार क लिए अपने कुटुंब के साथ चल देता। अब तक उसकी उम्र ४०–४५ की हो गयी थी। बडा स्पष्ट हैं कि जो २०–२५ बरसकी मेहनत के बाद सात जहाज का मालिक बन पाया, वह ३–४ बरस मे हजारों जहाज का मालिक और अबजोपति यों ही बन पाता—इसके पिछे अवश्य दैवि हाथ था। कुछ भी हो। वह अपनी प्रामाणिकता और निस्वार्थ दीन–दुखियोंकी सेवा के कारण श्री माताजी की दया का कारण बना। आखिर आप किसी को दोस्त बनाना चाहते हैं या किसी को नोकरी पर रखना चाहते हैं तो क्या यह सच नहीं है कि आप किसी ऐसी ही व्यक्ति पर अपनी पसंदगी उतारेंगे जो निस्वार्थी और भली हो? फिर श्री माताजीने भविष्य के महाभयंकर दुष्काल मे लाखों

पिड़ितो की सेवा करने के लिए श्री जगडूशाह जैसी भली व्यक्ति को अपनी कृपा का भागी बनाया, इसमे क्या आश्चर्य ? यों तो समय का फेर स्वयं कसौटी है, फिर भी बुरा समय आनेसे पहले उसका विचार किया हो तो बुरे दिन अखरते नहीं। श्री माताजीने संभवतया इसी लिए श्री जगडूशाह की बडी ही परिक्षा करने की सोची।

बहुत आगे हम कह चुके हैं कि श्री माताजी भारत को–सौराष्ट्र के दक्षिण मे सागर किनारे से होते–विदेशी आक्रमण सें बचाए हुए है–वे सागर की ओर पाश्चमाभिमुख हो कर बैठी हुई है और वहांसे उनकी दृष्टि के सीध मे जितने जहाज निकलते, उन सब को वे डूबो देती, केवल वे जहाज बच जाते जो शुभ हेतु सफर कर रहे हो। किन्तु, इधर कई बरसों से इन व्यौपारी जहाजोंने भी श्री माताजी को श्रीफल चढ़ाना छोड दिया था--ऐसा वहीं कि आज के युग मे ही लोगों मे अश्रद्धा या नास्तिकता आई हैं, पहले भी ऐसा ही था-ये समन्दर के प्रवासी समझते थे-कि कोयलिया पहाडी की सीध मे जब निकले तब समन्दर मे बैठे बैठे श्री माताजी के नाम से सागर मे श्रीफल फेंका न फेंका एक ही बात है। बात तो यु बडी मामुली हैं, लेकिन जिस देविने उनकी रक्षा का भार उठाया है उसके प्रति कुछ भो भाव न रखना, उन्हें न जाने किस गड्‌दे मे ले जाता। और अगर उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व श्री माताजी फेंक भी देती तो भी नाम तो आखिर इन्हीं का बदनाम होता। यह सच है कि किए हुए भुगतने ही पडते हैं लेकिन डूबते को बचाना भी धर्म है–सो श्री माताजीने उन सबों की बुद्धि ठिकाने पर लाने के लिए भी श्री जगडूशाह पर ही सौफ उतारा।

किसी विशेष निश्चित परिणाम के लिए आज भी योजनाएं बनायी जाती है-अंतर केवल इतना है कि देश की योजनाओं का हमें पता है लेकिन चौदह भुवन पर शासन करनेवाली त्रिभुवन पालक श्री माताजी की किसी दया या चमत्कार के पिछे क्या योजना हो सकती है इसका हमे कतई पता नहीं। बात निपट जाने के बाद ही हम सोचते रहने हैं और अन्तमे अनुमान का सहारा लेते है, हेतु यही है कि उनमे श्रद्धा और बढे जिससे इस जन्म के पाप कटे और चौरासी फेरों का चक्कर टूटे।

अपने सातों जहाज के साथ जगडूशाह कच्छ से जावा की सफर चल पडा है। आगे माल–सामान से लदे छह जहाज जा रहें है. सातवे जहाज मे वह अपनी दो पत्नी और एक पुत्र के साथ सफर कर रहा हैं। जहाज कोयलिया पहाडीपर विराजित श्री हरसिद्धि माताजी के मदिर की सीध मे आने लगे। ज्यों ही जहाज श्री माताजी की दृष्टि मे आने लगा, डूबने लगा। एक, दो, तीन... ...जहाज डूब रहे हैं। सातवें जहाज मे बैठा जगडूशाह इस इश्वरी कोप पर हैरान है। सोचता है. उसने कभी कोई ऐसा काम नही किया जिससे किसीका दील दुखे। कुछ समज मे नहीं आया।

चार पांच ... जहाज पर जहाज डूबते आ रहे है। पुत्र और पत्नीयों के साथ जगडूशाह अपनी समस्त दौलत को डूबते देख रहा हैं—अपनी आंखों के सामने उसका सर्वनाश हो रहा हैं और वह कुछ भी तो नहीं कर पाता। मनुष्य कितना निर्बल है ? छठ्ठा जहाज भी डूब गया। अरे ! अब यह सातवां भी डूबने लगा, इतने मे देवि को करना कि जगडूशाह की दृष्टि श्री माताजी के मन्दिर पर पडी और खलासीयोंने उसे बताया कि यह श्री हरसिद्धि माताजी का मन्दिर है–वह तुरंत ही सब कुछ समज गया और वे श्री माताजीसे प्रार्थना करने लगे कि इन जहाजों को बचाले जिससे सभी कोई श्री माताजी के गुन गाये। जगडूशाह ने उसी समय प्रतिज्ञा की यदि सब जहाज समन्दर के उपर तैरने लगे तो वह अपने समस्त कुटुंब और आदमियों के

साथ श्री माताजी की पूजा करने के बाद ही जहाज आगे बढाएगा। श्री माताजी तो कल्याण-कारी हैं, उन्होंने जो कुछ किया था वह तो समष्टि के कल्याण के हेतु ही किया था–जगडूशाह तो निमित्त बना था। श्री माताजी चाहें और हम मे से किसी को भी ऐसा सुअवसर मिले तो क्या हम चुकेंगे? आप शायद यही कहेंगे कि पहले से मालूम हो, तो किसी भी कसौटी पर कस लो। आखिर यह संसार ही है न? रोटी मिलेगा इसका पता हो तब तो कुत्ता भी घंटों तक खडा रहता है।

जगडूशाह ने मन मे संकल्प क्या तुरंत ही उसने अपने सभी जहाजों को मियाजी की बंदर गाह मे देखा–वह प्रसन्नता के मारे पागल-सा हो गया। आव देखा न नाव, तुरंत ही पहाडी पर चढने लगा और श्री माताजी की मूर्ति के समक्ष भावावेश मे गिर पडा–कहते है कि तीन दिन और तीन रात वह इसी तरह एक ध्यान–बेहोश–सा समाधि अवस्था मे श्री माताजी के चरणों में पडा रहा। उसका कुटुंब भी इसी तरह श्री माताजी की की स्तुति करता रहा। चौथे दिन अन्तरिक्ष से आवाज आइ—"जगडूशाह, मैं तुम्हारे निश्चल चरित्र और सेवा से अत्यत प्रसन्न हुं, कोई भी वरदान मांग लो।"

पाठक, जगडूशाह का उत्तर सुन कर तो आप भी आश्चर्यचकित होंगे, लेकिन कितना सुंदर भाव है यह—"मातेश्वरी! मैं मनुष्य हुं, अपनी माता से मनुष्य रूप मे ही सहायता चाहुंगा—यदि वरदाता दर्शन न दे तो मैं कैसे वरदान स्वीकार कर सकता हुं? सो कृपया प्रथम प्रत्यक्ष होईए जिससे यह आंखे धन्य हो।"

इन शब्दों मे भक्त हृदय के कैसे सुन्दर भाव चित्र पडे हैं? व्याख्या करने चलें तो इतिहास की बडी पुस्तक भी इन भावों को अपने मे समा नहीं सकती। सच है न?

मन्द मन्द मलकती हुई श्री माताजी कन्या के स्वरूप मे प्रत्यक्ष हुई। क्या ही उनकी शोभा थी? क्या हो मनोरम्य मूर्ति थी? बोली—"अब बोलो, क्या मांगोगे?"

"पहले तो यह कि आप आज से जहाजों को डुबोया न करे, इसके बदले मैं ऐसी व्यवस्था किए देता हुं जिससे इधर से गुजरनेवाले बेड़े एक–एक श्रीफल आपके नाम पर रत्नाकर मे चढाया करेंगे।"

श्री माताजीने तथास्तु कहते हुए कहा—पुत्र. मुझे यह स्वीकार है। लोग अपनी रक्षा का बोझ स्वयं ढोने लगे यह बहुत अच्छा है और मेरा वचन है की इन श्रीफल की चढैती के बदले मैं उन्हें संकट के समय उचित सहायता करूंगी।" आज भी कोयलिया पहाडी के सन्मुख होकर जितने भी जहाजी बेड़े–आगबोट और यात्री वगैरह गुजरते हैं वे श्री माताजी का मंदिर देखनेपर समन्दर मे श्री माताजी के नाम से एक एक श्रीफल फेंकते हैं। जगडूशाहने तत्पश्चात् दूसरा वरदान मांगा–"श्री माताजी! मैं आपके लिए एक भव्य मंदिर इसी कोयलिया पहाड की तलेटी मे–मियाजी के सामने पूर्व दिशामे (समंदर की परली तरफ पर खाडी के इस तरफ) बनवाना चाहता हुं सो कृपया आप यहांसे वहा चल कर बिराजिये। बस मेरी यही इच्छा है और इसे आप पूर्ण कीजिए।"

श्री माताजी—"वत्स! इस इच्छाका हार्द बडाही कल्याणमयी है। तुम्हारी यह शर्त भी मुझे स्वीकार हो सकती है किंतु अब मेरी भी शरत सुनो! पहले तो यह कि मैं यहां से निकलु तो कैसे? मैं किसी भी दिशामें से हो कर मंदिर के बाहिर कदम नहीं रखुंगी सो मेरी यह बात बनी रहे वैसे तुम मुझे निकालोगे। दूसरे यह कि इस मंदिर से तुम्हारे नए मंदिर तक चलने

के लिए मेरे हर कदम पर तुम्हे मुझे कुछ न कुछ देना होगा। बोलो क्या अर्पण करोगे? चुनाव तुम्हारे हाथ है। तुम जो कुछ निर्णय करो वह निभा नही सके तो मैं वहीं से इस मंदीर को लौट चलूगी और फिर तुम्हारी एक बात भी न सुनुंगी। सोच समज कर उत्तर देना।"

वैश्यपुत्र ने सोचा इसमे कौन बडी है। बोला—"दोनों शरतें स्वीकार है। मैं आपको हर एक कदम पर आपको एक पशु की बलि चढाऊंगा।" और वह श्री माताजी के आशिर्वाद ले कर तैयारियों में जुट गया।

एक कविने लिखा हैं—

जननी जण तो भक्तजन, या दाता या शूर,
नहीं तो रहना बांझनी, मत खोई यो तू नूर।

सच्चे अर्थ मे मनुष्य जीवन तभी सार्थक है यदि हममे भक्ति, शूरवीरता और दानी के लक्षण है, वरना हमने अपनी माता को व्यर्थ ही कष्ट दिया हैं। सच पूछो तो हममेंसे हर किसीने अपने गर्भावास मे श्री माताजी को यही वचन दिया था कि हम उनकी निश्छल-निस्वार्थ भावसे भक्ति करेंगे। उन्होंने हमे जन्म दे कर अपना वचन भी निभाया और हम अपना वचन निभा सके इस लिए संसार जितना बडा क्षेत्र भी दिया। हर कोई इस शर्त मे कितना पूरा उतरा है सो तो केवल वही जाने परंतु जगडूशाह अपने वचन का पक्का था।

जगडूशाह ने सारे देश से बलि के लिए प्राणी इकट्ठे लिए-देश भर मे कहीं भी बलि के योग्य बकरे या भैंसे रहने नहीं दिए। दूसरी ओर नया मंदिर भी बन गया और वह श्री माताजी को पूराने मंदिर से लिवाने आ गया। पूराने मंदिर पर जा कर उसने मंदिर शिखर-गुंबज हटवाया ओर उपरसे श्री माताजी को आवाज दी—"माताजी, शिखर के रास्ते से बाहर निकलिए-आपकी पहली शरत पूरी की गई है। श्री माताजी मुस्कुरा कर बाहर आयी और जैसे जैसे जगडूशाह ए. एक प्राणो की बलि देता गया। श्री माताजी एक एक कदम नए मंदिर की ओर चलने लगी।

वैसे एक ऐसी भी लोकोक्ति है कि श्री माताजीने किसी भी दिशाओं से न निकलनेवाली बात वीर विक्रम के साथ की थी और विक्रमने ही शिखर तोंड कर श्री माताजी की शर्त पूरी की थी। किंतु विक्रम के साथ इस घटना का संबंध स्थापित करें ऐसी कोई बात इतिहास मे नहीं हैं अपितु ऐसे प्रमाण अवश्य हैं जिससे यह सिद्ध होता हैं कि गुंबज जगडूशाह ने ही हटवाया था। यहां के खाखाओं मे जो दंतकथाएं प्रचलित हैं वे भी इसी बात को पुष्टि करती है। चुकि जगडूशाहने जब प्रथम श्री माताजो को प्रसन्न किया इस बातके साक्षी जगडूशाह के खलासी भी थे-उनकी इन प्रचलित दतकथा को भी हमने सत्य माना हैं और इस लिए गुंबजवाली बात को विक्रम की कहानी के साथ नहीं जोडा। आज भी यह गुंबज उपरवाले मंदिर के चौपाल मे पडा पडा इस घटना की सच्चाई के डंके बजाता है। आज पांच सौ बरस हो गए इस बात को फिर भी यात्री जब इस गुंबज को देखते है यही सोचते है-'काश कि हमारे भाग मे यह काम आता!"

हां, तो अब अपनी मूल बात पूरी करें, जगडूशाहने बलि देने को हजारों पशु इकट्ठे किए थे। यों तो पहाडीवाले मंदीर से नया मन्दिर बहुत दूर नहीं-कोई दो, तीन सौ कदम पर ही रहा होगा। श्री माताजी भो भक्त की होशियारी पर मन ही मन प्रसन्न हो रही हैं और जैसे जैसे बलि दी जाती हैं बलि के स्थान पर कदम रखती जाती हैं। इधर जगडूशाह बडा परेशान हैं,

पशु कम होते जा रहे है पर नया मंदिर अभी दूर हैं। जगडूशाह अपने हाथो बलि दे रहा है और मन ही मन श्री माताजी से प्रार्थना करता है कि हे माताजी, मेरा सर्वस्व ले लेना पर मेरा वचन पूरा हो।

इधर नया मन्दिर केवल चार कदम दूर रह गया और बलि के लिए एक भी पशु नहीं बचा। जगडूशाह ने बिनती की—" माताजी, अब तो सिंहासन केवल चार कदम दूर रह गया है—आप जान्ती हैं, मेरे मन मे खोट नहीं। जितने भी बलि योग्य पशु उपलब्ध थे, मैंने सब इकट्ठे किए थे। मैं अपना सर्वस्व धन नाम करता हुं, अब तो कृपा कीजिए।" यह कहते कहते जगडूशाह की आंखों मे आंसू आ गए। श्री माताजी बोली—" पुत्र! तुम्हारे मन मे खोट नहीं यह मैं जानती हुं। तुमने अपना समग्र धन मुझे अर्पित किया सो मैंने स्वीकार किया, पर मुझे अपना वचन निबाहना ही होगा। यदि बलि नहीं दे सकते तो मैं फिर उपर चली जाऊंगी। अभिमान तो हर किसीका एक दिन टूटता ही है।

अपनी सारी मेहनत पर यों पानी फिरते देख कर जगडूशाह बडा ही दुखी हो रहा हैं। सोचता है जो मनुष्य अपना बोल पूरा सकता उसका जीवन ही व्यर्थ हैं। इतने मे उसके पुत्र माणेललाल ने अपने पिताजी से कहा—" पिताजी, केवल चार पशुओंका ही बलि बाकी हैं। आप चिन्ता न कीजिए। अगर आपका कोल हम पूरा नहीं कर पाते तो यह मनुष्य जीवन पशु के तुल्य ही हो जाएगा - पहले मैं अपने प्राण देता हुं, बादमे मेरी दोनों माताजी और अंत मे आप अपनी बलि दीजियेगा। जीवन भी कृतार्थ हो जाएगा और श्री माताजी भी सिंहासन पर बिराजेंगी।" यों कह कर उसने श्री माताजी के चरण छुए, तुरंत ही उसके प्राण-पखेरु उड गए। जगडूशाहने देखा कि वह अभी खडा हैं और उसका बेटा उसके पहले ही अमरपंथ को चल दिया। श्री माताजी एक कदम नीचे उतरी। बादमे दोनों स्त्रीयां और अंत मे जगडूशाहने पश्चिमाभिमुख हो कर श्री माताजी के चरणों मे अपनी बलि चढायी। श्री माताजी के चरणों को छुते ही उनके प्राण चले गए। श्री माताजी जगडूशाह की पीठ पर पैर रख कर सिंहासन पर बैठ गयीं। नए मंदिर मे वे आसित हुई कि समस्त दिशाओं से जयध्वनि गूंज उठी। श्री माताजीने इन चारों को जिवित किया और वे " जय हरिसिद्धि " के गुंजार उठाते खडे हो गए। श्री माताजी—पुत्र! मैं तुम्हारी निष्ठा से अत्यंत प्रसन्न हुं, वरदान मांगो।

इस पर कहते है जगडूशाह ने उन सब पशुओं के लिए जीवदान मांगा जिनकी बलि चढायी गई थी। वे सब तुरंत ही जीवित हो उठे और अपने स्थल पर चले गए।

श्री माताजी—" पुत्र! तुमने अपने लिए कुछ नहीं मांगा ?"

" जिन पर आपकी कृपा के चारों हाथ हो मांग कर पछताना ही होगा। फिर भी आप कहती हैं तो मैं निर्वंश चाहता हुं।"

" सो क्यों ?"

" माताजी! क्या पता मेरे पिछे मेरी प्रजा कैसी हो ? यदि कुलांगार हुई तो मेरा नाम डुबोयेगी और इस बात को मैं आपके धाम मे सहन नहीं कर पाऊगा।"

श्री माताजी—" जैसी तुम्हारी इच्छा! मेरा अभय है कि तुम चारों अपना देह छूटने के बाद मेरे देवीधाम मे अनंत काल तक रहोगे। संसार मे रहते हुए भी तुम सब जीवन मुक्त होओगे और इस मंदिर मे मेरे साथ साथ तुम्हारी भी पूजा हुआ करेगी जिससे आनवाली

पिढियां तुम्हारी भक्ति का यशोगान गाया करें–अब संसार मे जाओ और लोक कल्याण के कार्य करो !"

जगडूशाह—"पूज्य माता ! मैने तो अपना धन भी आपको दे दिया है और जब मुझे और कोई इच्छा नहीं है तो संसार मे क्यों भेजती है ? दूसरे, मैं क्या करूंगा वहां जा कर ?"

अब श्री माताजी क्या कहती ? उन्होने क्या निश्चित किया है इसका पता जगडूशाह को थोडे था ? वे बोली—"पुत्र, अभी तुम्हारे हाथों से बहुत शुभ कार्य होने का है। कुछ बरसों के बाद इस देश मे भयंकर दुष्काल आयेगा, लोग अन्न–पानी को तरसेंगे। उनके प्राण बचाने के लिए तुम अभी से व्यवस्था करो। जगह जगह तालाब–सरोवर बनवाओ अन्नक्षेत्र खोलो। समस्त ब्रह्मांड और चौदह लोक की संपत्ति मे·ी ही तो है–मैं तुम्हारा धन तुम्हें वापिस लौटाती हुं–इसे मेरी अमानत समज कर ब्यौपार मे जुट जाओ–तुम जिधर हाथ डालोगे, सफलता तुम्हारे कदम चुमेगी। तुम्हारी संपत्ति के आगे राजा–महाराजा तितके–से लगेंगे।" इत्यादि।

इसके बाद जगडूशाह की ख्याति व संपत्ति दैनंदिन बढने लगी। कुछ ही दिनों मे वह हजारों जहाज का स्वामी बना। अबजोपतियों मे उसकी गिनती होने लगी, फिर भी वह पहले की तरह भक्तिमय ही जीवन बिताता रहा और श्री माताजी के वचनों को याद रखते हुए उसने अनाज इकठ्ठा करना शुरू किया। बडे बडे सरोवर बनवाए और ऐसे ही कई सेवा काय किए। मंदिर के पूर्व मियाजी शहर में भी उन्होंने एक सरोवर बनवाया था। आज भी लोग 'जगडूशाह सर' तालाब के नाम से पहचानते है—वहां पास मे अन्न के बडे भारी सात भांडार थे। और ऐसे सैंकडो सरोवर व अन्न क्षेत्र सारे देश मे उन्होंने खोल रखे थे–जिनसे खंड हर आज भी श्री माताजी और उनसे भक्त के गुन गा रहे है।

श्री माताजी के कथनानुसार बडा भयंकर दुष्काल आया। लोग त्राहि त्राहि पुकारने लगे। कहीं भी पानी की बुंद तक नहो मिलती, अन्न तो कहां से मिलता। जगडूशाहने अपने भंडार खोल दिए। हर इलाके मे उसके अन्नक्षेत्र अबाल–वृद्ध को बिना किसी भेदभाव के अनाज देने लगे। कहते हैं कि यदि जगडूशाह न हुआ होता तो इस देश मे मनुष्य तो क्या, एक पशु तक भी जिंदा नहीं रह पाता।

यह दुष्काल बरसों तक रहा। इन दिनों वह अपने कुटुंब के साथ श्री माताजी के दर्शनों को आया करता और उनकी कृपा मांगता रहता। ऐसे ही किसी एक दिन वह अपने कुटुंब के साथ मन्दिर मे आया था, तो देखता हैं कि उसकी एक पत्नी श्री माताजी के सामने रो रही है। जगडूशाह बडा विचलीत हो गया, आखिर यह क्यों रो रही हैं खूब सोचा पर उसकी समज मे बात नहीं आयी। उसके पूछने पर भी पत्नीने नहीं बताया और वह दिन–ब–दिन गलने लगी।

जगडूशाहने हाट कर श्री माताजी से प्राथना की और वे प्रत्यक्ष हुई। बोली—पुत्र, तुम्हारी आयु अब ढल रही है। तुमने तो मुझसे निर्वेश मागा किन्तु इसमे तुम्हारी पत्नी का क्या दोष ? वह चाहती हैं, अगर उसके एक बच्चा होता ! तुम्हारी बडी पत्नी के एक पुत्र है सो वह तो संतुष्ट हैं। हर एक स्त्री मां बनना चाहती है, कोई स्त्री यह नहीं चाहती कि दुनिया उसे बांझ कहे। यह कहती है कि घर मे एक कन्या होती तो सारा घर उसकी पायल से झुम उठता। खैर ! उसकी भी इच्छा पूरी हो ! तुम पूजारी से कहो कि वह गृहस्थी बने, मैं स्वयं कन्या के

रूप मे उसके घर शरीर धारण करूंगी। इस मन्दीर के बगल मे एक झुला लगवाओ ताकि उस कन्या को तुम्हारी पत्नी वहां झुलाया करे। तुम्हारे देह छूट जाने के बाद वह कन्या अन्तरिक्ष मे चली जायगी। इतना कह कर श्री माताजी अन्तध्यान हो गयी।

जगडूशाहने पूजारी से सारी बात कहीं। पूजारी जगडूशाह पर श्री माताजो प्रसन्न है इस बात को जानते थे, लेकिन उन्हें डर लगा कि यदि श्री माताजीने फिर कहीं स्थान बदला तो।

मानो पूजारीजी का संशय दूर करने के लिए ही अंतरिक्ष से आवाज आयी—मैं इस मन्दीर मे हमेशा प्रत्यक्ष रहुंगी। इसके प्रमाण मे मैं जब उज्जैन से लोटूंगी, इस झुले पर आकर बैठूंगी–तुम इस झुले को झुलता देखने के बाद ही मेरी पुजा करना–तुम्हारे जोवनपर्यंत यह क्रम बना रहेगा। इतना ही नहीं, भविष्य मे भी हमेशा के लिए यह झुला मेरा शयन–स्थान बना रहेगा।''

अन्तरिक्ष से इस वचन को सुनकर पुजारी को ढाठस हुई। वे गृहस्थी बने। जगडूशाहने स्वयं इनका विवाह रचा। कालक्रम से इनके यहां पहला संतान कन्या हुई जिसे जगडूशाह की पत्नी झुलाया करती थी। जगडूशाह ने एक दिन श्री माताजी से बिनती की कि अब समय अच्छा आ गया है, बरसात अच्छी हुई है और फसल भी। उसका कार्य पूरा हुआ सो अब इन्हें अपने धाम मे बुला ले। श्री माताजी ने इन चारों भक्तात्माओं को अपने देविधाम मे बुला लिया–इधर वह कन्या भी झुलामे झुलती हुई अदृश्य हो गयी–पूजारी वगैरह सब देखते रह गए।

यही है वह नया मंदिर जिसे जगडूशाह ने बंधवाया था और वहां जगडूशाह ने अपने परिवार का बलिदान दिया था। श्री माताजी की पूजा के बाद इनकी पूजा भी आज तक होती आयी है और वह झुला भी आज श्री माताजी की मूर्ति के दक्षिण मे विद्यमान है। झुले पर मखमल की गद्दी लगी हुई है–गोल सिरहाने रख्खे हुए है–सुन्दर मलमल के बिछौने बिछाए हुए है। श्री माताजी सवा प्रहर दिन बितने पर यहां आती है। मध्याह्न होने पर यहां शयन करती है। पहले के दिनों श्री माताजी के आगमन पर मन्दिर के किवाड अपने आप खुल जाते थे। यह झुला सवा प्रहर दिन चढे, दोपहर को और सायंकाल अपने आप झुलता रहता। इस कलीयुग मे आज भी कई बार यह अपने आप झुलने लगता है और हजारों भक्त इस दृश्य को देखकर कृतार्थ हुए है। आज भी वे पहले की तरह ही प्रत्यक्ष हैं। कई बार तो शयन–गृह मे झुले के उपर फूल के हार एवं कुछ बिखरे हुए फूल पाये जाते हैं–श्री माताजी के कपोल की बिंदिया भी पडी होती है तो कभी कुमकुम के चरण–चिह्नों के दर्शन होते हैं। यह तो सब आज भी बार–बार देखने को मिलता ही है। इसके अतिरिक्त कई बार सवेरे पूजारी जब मंदिर साफ करता है तो देखा जाता है कि सिंहासन के पास की पादुकाए कीचड से भरी है मानो श्री माताजी कीचड से पैदल आयी हैं।

तुलसी ने कहां है—

धन रहे न जोबन रहे, रहे न गाम के ठाम,
तुलसी जगमे जश रहे, कर दे किसी का काम।

जगडूशाह ने अपना नाम तो अमर किया ही अपितु हम इन कलियुग के बासिओं के लिए भी उन्होंने श्री माताजी के ऐसे प्रत्यक्ष प्रमाण दे जाकर के भक्तों को बहुत बडा सबल दिया है जिसके लिए हम सब उनके कृतज्ञ हैं।

ऐसी चमत्कारी और सबो के कष्ट हरनेवाली जगतजननी श्री हरसिद्धि माता के दर्शन का

अलभ्य लाभ भला कौन उठायेगा । वह अवश्यही बडा हतभागी होगा जिसने श्री माताजी के दर्शन करके अपने को कृतार्थ नहीं किया ? लेकिन जैसा कि देखा जाता हैं, लोग कष्ट होने पर ही भगवान की याद करते है । देश–परदेश के लोग श्री माताजी की मनौतियां रखते है । श्री माताजी भी उनकी आशा पूरी करती है, और इसके प्रमाण देते चलना हमारे बस की बात नहीं भला, तारों को कोई गिन पाया है ? इतना अवश्य कहेंगे कि आज भी श्री माताजी का प्रताप और चमत्कार उतनाही प्रत्यक्ष है जितनी भगवान श्रीकृष्ण को प्रत्यक्ष थी। प्रिय पाठक, श्री हरसिद्धि माता के प्राकट्य का इतिहास तो यहां पर पूर्ण होता है, आप केवल एक–दो पुराने और दो–चार वर्तमान समय में बने हुए श्री माताजी कृपा के दृष्टांत दे कर हम इस पुस्तक को समाप्त करेंगे । अस्तु ।

आज से कोई तीन सौ बरस पहले पूजारी श्री जमनागिरी के पुत्र श्री भभूतगिरी इस मन्दिर के महंत थे । पूजारी भभूतगिरी श्री माताजी के अनन्य भक्त थे । उनका नियम था कि श्री माताजी की पुजा करने तक अन्न या जल भी नहीं लेना । नवरात्रि के दिनों तो वे नव दिन का अनशन रखते थे और एक पैर पर खडे रह कर श्री माताजी के जप किया करते । विजया-दशमी के दिन हवन होने के बाद ही वे श्री माताजी के चरणामृत पान करने पर अपना व्रत पुरा करते थे ।

ऐसे श्री माताजी के भक्त को हरस का दर्द हुआ । भक्तराज बडे संकट मे आ पडे । रोग अपनी भयंकरता की सीमा लांघ गया । इसे श्री माताजी की इच्छा समझकर भक्तराज एक दिन मध्यरात्री के समय मंदिर मे आए और श्री माताजी की समशीर उठा कर कमलपूजा करने पर तुले । ज्योंही वे समशीर से गरदन काटने जा रहे थे कि अंतरिक्ष से आवाज आई— ‘ वत्स, यह क्या कर रहे हो तुम ?”

भक्तराज—“ माता इस दर्द के मारे अब आपकी पूजा भी नहीं कर पाता । मुझ से यह वेदना सहन नहीं होती सो आपका दिया हुआ देह आपही को अर्पण कर रहा हुं ।”

श्री माताजी की आंखो से स्नेहाश्रु बहने लगे । मूर्ति के कनक नेत्र इन आंसुओं का बोझ नहीं ढो पाये । श्री माताजी बोली—“ पुत्र, इन कनक नेत्रों को ले कर सुनार के पास रवि या मंगल के दिन जाना और उसको कहना कि वह इस नेत्र को अंगूठी मे जड़ दे—वह उस दिन अपवास रख कर इस को जड़े । बादमे तुम इसे अपने दाहिने हाथ की पहली (अंगुठे के पासवाली) अंगुलि मे इसे पहनना और रविवार या मंगलवार के दिन एक ही बार भोजन लेने का व्रत रखना । तुम्हारा दर्द मिट जायगा ।”

भक्तराज ने आकाशवानी सुन कर कनक नेत्र की अंगूठी बनवायी । कुछ दिनों मे उनका दर्द चला गया । लोगों को इस बात का पता चला और पूजारी से श्री माताजी के नेत्रों की मांग की जाने लगी । पूजारी बेचारे क्या करते ? वे श्री माताजी के नाम पर नेत्र देने लगे । और आज भी यह क्रम चल रहा हैं और श्री माताजी के नेत्रों के प्रभाव से जिनके हरस जैसे भयंकर रोग मिट गए हो ऐसे व्यक्तियों की संख्या हजारों से कम नहीं । कहनेवाले इसे श्रद्धा का फल कहते हैं और ज्ञानी उन्हें श्री माताजी का प्रत्यक्ष प्रभाब कहते है ।

दूसरी बात है आज से कोई डेढ़ सौ वर्ष पहले की । यहां से कोई पचास कोस पर जुनागढ़ करके शहर हैं- वहां के नवाब के राज्य के अन्तर्गत कुतियाला करके एक तहसील हैं । इस तहसील के गांव चोटियाजा मे नरसंगदास नाम का एक ब्रह्मभाट रहता था । वह जन्म से

गुंगा था। यह बडा ही गरीब था और गुंगा होने के कारण उसे पूरी भीख भी नहीं मिलती थी। उसने श्री माताजी के प्रताप की बाते सुनी थी और उसकी इच्छा हुई--"अरे! मैंने कैसे पाप पाप किए होंगे? मैं गूंगा श्री माताजी की स्तुति तो क्या बोल सकता हुं! उनकी कुछे भी सेवा नहीं कर सकता क्या?" और उसने भिक्षा मे जो कुछ मिलता वह पैसे जोडना आरंभ किया। कभी भोजन करता तो कभी नहीं। बरसों तक इस तरह गांव गांव घूमता रहा और पैसे जोडता रहा। ऐसे घूमते-फिरते वह मियाजी आ पहूंचा- दूर से मंदिर की आरती सुनी तो रहा नहीं गया-उसकी इच्छा थी कि २५१ कोटी (एक तरह का रुपया जो यहां का चलण था) होने पर वह श्री माताजी के दर्शन को जाएगा और अपनी तरफसे इस धन को भेट करेगा-अभी पूरा धन नहीं जुटा था फिर भी वह अगम्य आकर्षण के कारण मन के भावों को मार नहीं पाया। चल पडा श्री माताजी के द्वार!

मन्दिर की शोभा देख कर वहांसे हटने का उसका जी ही नहीं होता था। चौथे दिन सोमवार को न्हाधो कर वह मंदिर मे खडा हैं-सवा प्रहर दिन होने पर आरती शुरू हुई हैं-डंके और नक्कारे बज रहे हैं- न जाने इस नाद मे हम कौनसी दुनिया मे जा बसते है! वह श्री माताजी की मूर्ति के सामने हाथ जोड कर खडा हैं-इतने मे उसे ऐसा आभास हुआ जैसे श्री माताजी सामने खडी हैं और हाथ से कुछ इंगित कर रही है। यह समजा कुछ मांग रही हैं, धन देना भूल गया-पूछने की इच्छा हुई तो जीभ ने साथ नहीं दिया। तुरंत ही भावावेश मे जेब से चक्कू निकाल कर अपनीं जिह्वा को काट कर श्री माताजी के चरणों मे रख दी। मुंह से लहु की धारा बह निकली और वह मूर्छित हो कर गिर पडा।

पूजारी ने नरसंगदास के मुंह मे श्री माताजी की विभूति रखी और उसे एक कमरे मे बंद कर दिया। दूर खंभालिया दारोगा को समाचार पहुंचाया कि मंदिर मे इस ब्रम्हभाट ने आत्महत्या की है। इधर शाम ढलती गई, अंधेरा छाता गया और रात हुई न हुई कि बंद कमरे से श्री माताजी के छंदों की ध्वनि सुनाई देने लगी। पुजारी और यात्री लोग आश्चर्यचकित हो कर देखते रहे। सोचने लगे कि यह क्या चमत्कार है। इस ब्रम्हभाट ने तो अपनी जीभ काट दी थी और मर गया था-अभी अभी सवेरे तो इसे मुर्दा पाया था-दारोगा को खबर पहुंचायी थी, वे भी आते होंगे और इधर वह ब्रह्मभाट पंडित की तरह एक के बाद एक स्तोत्र बोले जा रहा है। पूजारी ने कमरे से झांका तो देखता है कि नरसंगदास के मुंह मे सर्पिणी-सी दो जीभे लगी हुई है और वह छंद पर छद बोलता जाता है। इस चमत्कार से प्रभावित हो कर पूजारी ने किवाड खोले तो ब्रह्मभाट ने श्री माताजी समक्ष बैठ कर उसी समय ८४ छंद बनाए। ज्यों ही ब्रह्मभाट के मुंह से बहती सरस्वती धारा रुकी कि श्री माताजी के छत्रों मे से एक सोने का छत्र (यह छाते-सा होता है और श्री माताजी को कई भक्त इसका चढ़ावा चढ़ाते है) नरसंगदास की गोद मे आ गिरा।

ब्रम्हभाट ने श्री माताजी की इस प्रसादी का अपनी आंखों से नमन लिया और अपनी जेब से १७५ कोटियां-अपनी उम्रभर की कमाई श्री माताजी के चरणो मे भेट कर दी। पूजारी और दूसरों ने इस भेट लेने से इन्कार कर दिया क्यों कि वे सब जानते थे कि यह तो बडा ही गरीब है और भिक्षा मांग कर अपना जीवन निर्वाह करता है, लेकिन नरसंगदास अपने इरादे से डिगा नहीं। उसने तो साफ साफ कह दिया—"श्री माताजी ने मुझे वाचा दी है, अब मुझे भिक्षा थोड़े ही मांगनी पडेगी। मुझे इस धन की आवश्यकता भी नहीं और मैंने इसे श्री माताजी के चरणों पर चढाने के लिए ही जमा किया था। मैं तो इन्हे अर्पण कर चुका अब आप इस

धन की जो भी व्यवस्था करना चाहें वह करें।" इस पर उस धन से मंदिर मे ही एक छोटासा कमरा बनवाया गया और वहां अग्नि की प्रतिष्टा को गई जो आज भी श्री माताजी की पूर्व दिशा मे विद्यमान है।

गूंगों को भी वाचा देनेवाली हे मां, तेरे कृपा के चमत्कार भी तुझ जैसे ही अद्वितीय होते हैं। हम तुम्हें बार-बार नमस्कार करते हैं।

भारत के चालीस कोटि हिंदु भगवान श्रीकृष्ण के इन वचनों पर श्रद्धा रखते हैं और श्रीकृष्ण ने अपने इस वचन को हमेशा निबाहा है और हमेशा निबाहेंगे-केवल भक्त मे निष्ठा होनी चाहिए। तो भला, जगदूधात्री श्री हर्रसिद्धि माता जो भगवान श्रीकृष्ण की कुलदेवी थीं और जिनकी स्थापना परमात्मा श्रीकृष्ण ने स्वयं अपने हाथों की, वही क्या अपने भक्तों के कष्ट को दूर न करें, यह कैसे हो सकता है? जब तक श्रीकृष्ण के उपरोक्त वचन सत्य हैं, हमारे वेद और उपनिषद सच्चे हैं, भारत वर्ष की आध्यात्मिक उच्चता सत्य हैं, श्री हरसिद्धि माता का यह प्रभाव अविचल धारा के रूप मे अपने भक्तों पर बरसता रहेगा। जय हरसिद्धि!

कालक्रम से भाषा के जादू ने श्री हरसिद्धि माता का नाम श्री हर्षद माता कर दिया। हरसिद्धि से अपभ्रंश होते हुए हर्षिद्धि, हर्षिद्धा, हर्षिदा और हर्षद हुआ। चाहे हर्षद कहें या हरसिद्धि, श्री माताजी तो हमारे मनोभाव ही देखेगी न? हमसे और नहीं हो सकता तो केवल इतनाही करें कि श्री माताजी के गुणगान गाते रहें और समय मिलने पर उनके प्रत्यक्ष दर्शन के लिए जावें। अस्तु।

सर्वे सुखिनो भवन्तु।

श्री हरसिद्धयै नमः

समाप्त

चंडिपाठ

अध्याय ४ था–शक्रादय

इन्द्रादि देवने करेली स्तुति

ऋषिरुवाच— राग—वसंततिलक

ॐ शक्रादयः सुरगणा–निहतेऽतिवीर्ये, तस्मिन्दुरात्मनि, सुरारिबले च देव्या ॥
तां तुष्टुवुः प्रणतिनम्र–शिरोधरां सा, वाग्भिः प्रहर्षपुलकोद्गम–चारुदेहाः ॥ १ ॥

देव्या यया ततमिदं, जगदात्मशक्त्या, निश्शेषदेवगणशक्ति–समूहमूर्त्या ॥
तामम्बिकामखिलदेव–महर्षिपूज्यां, भक्त्या नताःस्म विदधातु शुभानिसा नः ॥ २ ॥

यस्याः प्रभावमतुलं, भगवाननन्तो, ब्रह्मा हरश्च, न हि वक्तुमलं बलं च ॥
सा चण्डिकाऽखिलजगत्–परिपालनाय, नाशाय चाशुभभयस्य, मतिं करोतु ॥ ३ ॥

या श्रीः स्वयं, सुकृतिनां भवनेष्वलक्ष्मीः, पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः ॥
श्रद्धा सतां कुलजन–प्रभवस्य लज्जा, तां त्वां नताः स्म परिपालय, देवि विश्वम् ॥ ४ ॥

किं वर्णयाम तव रूप–मचिन्त्यमेतत्–किं चातिवीर्य्य मसुरक्षय–कारि भूरि ॥
किं चाहवेषु चरितानि, तवाद्भुतानि, सर्वेषु देव्यसुरदेव–गणादिकेषु ॥ ५ ॥

हेतुः समस्त जगतां, त्रिगुणापिदोषै–र्न ज्ञायसे हरिहरादिभि–रप्यपारा ॥
सर्वाश्रयाऽखिलमिदं, जगदंशभूत–मव्याकृता हि परमा, प्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ ६ ॥

यस्याः समस्तसुरता, समुदीरणेन, तृप्तिं प्रयाति सकलेषु, मखेषु देवि ॥
स्वाहासि वै पितृगणस्य, च तृप्तिहेतु–रुच्चार्यसे त्वमत अेव, जनैः स्वधा च ॥ ७ ॥

या मुक्तिहेतुरविचिन्त्य–महाव्रता त्व–मभ्यस्यसे सुनियतेंद्रिय–तत्त्वसारैः ॥
मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्त–समस्तदोषै–र्विद्याऽसि सा भगवती, परमाहि देवि ॥ ८ ॥

शब्दात्मिका सुविमलर्ग्य–जुषां निधान–मुद्गीथरम्यपदपाठवतांच साम्नां ॥
देवी त्रयी भगवती, भवभावनाय वार्ता च सर्वजगतां परमार्त्तिहंत्री ॥ ९ ॥

मेघासि देवि विदिताऽखिल–शास्त्रसारा, दुर्गाऽसि दुर्ग भवसागर–नौरसंगा ॥
श्रीः कैटभारिहृदयैक–कृताधिवासा, गौरी त्वमेव शशिमौलि–कृतप्रतिष्ठा ॥ १० ॥

ईषत्सहासममलं, परिपूर्ण चंद्र–बिंबानुकारि कनकोत्तम–कांतिकांतम् ॥
अत्यद्भुतं प्रहृतमात्त–रूषा तथापि, वक्त्रं विलोक्य सहसा, महिषासुरेण ॥ ११ ॥

दृष्ट्वा तु देवि कुपितं भ्रुकुटीकराल–मुद्यच्छशांकसदृशच्छवि यन्न सद्यः ॥
प्राणान्मुमोच महिषस्तदतीव चित्रं, कैर्जीव्यते हि कुपितांतक दर्शनेन ॥ १२ ॥

देवि प्रसीद परमा भवती भवाय, सद्यो विनाशयसि, कोपवती कुलानि ॥
विज्ञातमेतदधुनैव यदस्तमेत–न्नीतं बलं सुविपुलं महिषासुरस्य ॥ १३ ॥

ते सम्मता जनपदेषु, धनानि तेषां, तेषां यशांसि न च सीदति, धर्मवर्गः ॥
धन्यास्त अेव निभृतात्मज–भृत्यदारा, येषां सदाभ्युदयदा, भवती प्रसन्ना ॥ १४ ॥

धर्म्याणि देवि सकलानि, सदैव कर्मा–ण्यत्यादृत: प्रतिदिनं, सुकृती करोति ॥
स्वर्गं प्रयाति च ततो, भवती प्रसादा–ल्लोकत्रयेऽपि फलदा, ननु देवि तेन ॥ १५ ॥

दुर्गे स्मृता हरसि भीति शेषजंतो , स्वस्थै: स्मृता, मतिमतीव–शुभा ददासि ॥
दारिद्र्यदु:खभयहारिणि, का त्वदन्या. सर्वोपकारकरणाय. सदाऽर्द्रचित्ता ॥ १६ ॥

अभिर्हतैर्जगदुपैति. सुखं तथैते, कुर्वंतु नाम नरकाय चिराय पापम् ॥
संग्राममृत्युमधिगम्य, दिव्य प्रयांतु, मत्वेति नूनमहितान्. विनिहंसि देवि ॥ १७ ॥

दृष्ट्वव किं न भवती, प्रकरोति भस्म–सर्वासुरार्नरिषु यत् प्रहिणोषि शस्त्रम् ॥
लोकान् प्रयान्तु रिपवोपि हि शस्त्रपूता, इत्थ मतिभवति. तेष्वपि तेऽति साध्वी ॥ १८ ॥

खड्गप्रभानिकरविस्फुर णैस्तथाग्रै:, शूलाग्रकान्तिनिवहेन, दशोऽसुराणां ॥
यन्नागता विलयमंशु–मदिंदुखण्ड योग्याननं तव, विलोकयतां तदेतत् ॥ १९ ॥

दुर्वृत्तशमन, तवदेवि शीलं, रूपं तथैतदविचिंत्य-मतुल्यमन्यै: ॥
वार्यं च हतृहृतदेव–पराक्रमाणां, वैरिष्वपि प्रकटितैव, दयात्वयेत्थम् ॥ २० ॥

केनोपमा भवतु तेऽस्य पराक्रमस्य, रूपंच शत्रुभयकार्य-तिहारि कुत्र ॥
चित्ते कृपा, समरनिष्ठुरता. च दृष्टा. त्वय्येव देवि वरदे, भुवनत्रयेऽपि ॥ २१ ॥

त्रैलोक्यमेतदखिलं, रिपुनाशनेन, त्रातं त्वया समरमूर्धनि तेऽपि हत्वा ॥
नीता दिव्यं रिपुगणाभय- मप्यपास्त–मस्माकमुन्मदसुरा–रीभवन्नमस्ते ॥ २२ ॥

लेन पाही नो देवि पाही खड्गेन चाम्बिके ॥ घंटास्वनेन न:पाही, चापज्यानि:स्वनेन च ॥ २३ ॥
ाच्यां रक्ष प्रतीच्यां च, चंडीके रक्ष दक्षिणे ॥ भ्रामणेनात्मशूलस्य, उत्तरस्यां तथेश्वरी ॥ २४ ॥
ौम्यानी यानी रूपाणि, त्रैलोक्ये विचरंति ते ॥ यानि चात्यर्थघोराणि, तै रक्षास्मांस्तथा भुव ॥ २५ ॥
ड्गशूलगदादीनी, यानी चास्त्राणी तेऽम्बाके, करपल्लवसंगीनी, तरस्मान् रक्ष सर्वत: ॥ २६ ॥

ऋषिरुवाच :—

वं स्तुता सुरर्दिव्यै:, कुसुमैनन्दनोद्भवै: ॥ अर्चिता जगतां धात्री, तथा गंधानूलेपनै: ॥ २७ ॥
कत्या समस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यैर्धुपैरतु धूपीता ॥ प्राह प्रसादसुमुखी, समस्तान् प्रणतान् सुरान् ॥ २८ ॥

व्युवाच :—

व्रियतां त्रिदशा सर्वे, यदस्मत्तोऽभिवांछीतम् ॥

वा उचु :—

भगवत्या कृत सर्वं, न किंचिदवशिष्यते ॥ २९ ॥

दयं नीहत: शत्रु–रस्माकं महिषासुर: ॥ यदि आपि वरो देयस्त्वयास्माकं महेश्वरी ॥ ३० ॥
संस्मृता संस्मृता त्वं नो, हिंसेथा: परमापद: यश्च मर्त्यस्तवैरेभिस्त्वांस्तोष्यत्यमलानने ॥ ३१ ॥
स्यवित्तर्द्धिविभवैधनदादीसंपदां ॥ वृद्धयेऽस्मत्प्रसन्ना त्वं, भवेथा: सर्वदाम्बीके ॥ ३२ ॥

ऋषिरुवाच :—

ति प्रसादीता देवैर्जगतोऽर्थे तथात्मन: ॥ तथेत्युक्त्वा भद्रकाली, बभूवांतर्हिता नृप ॥ ३३ ॥
त्येतत् कथितं भूप, संभता सा यथा पुरा ॥ देवी देवशरीरेभ्यो, जगत्त्रयहीतैषिणी ॥ ३४ ॥
नश्च गौरीदेहात् सा, समुद्भूता यथाभवत् ॥ वधाय दुष्टदैत्यानां, तथा शुंभनीशुंभयो ॥ ३५ ॥
क्षणाय च लोकानां देवानामुपकारीणो ॥ तच्छृणुष्व मया ख्यातं, यथावत् कथयामि ते ॥ ३६ ॥
ति मार्कन्डेयपुराणे सावर्णिके मन्वंतरे देवीमाहात्म्ये शक्रादिकृत देव्या: स्तुतिर्नाम चतुर्थोध्याय :

विश्वविख्यात श्री हर्षद माताजीका भव्य मंदिर

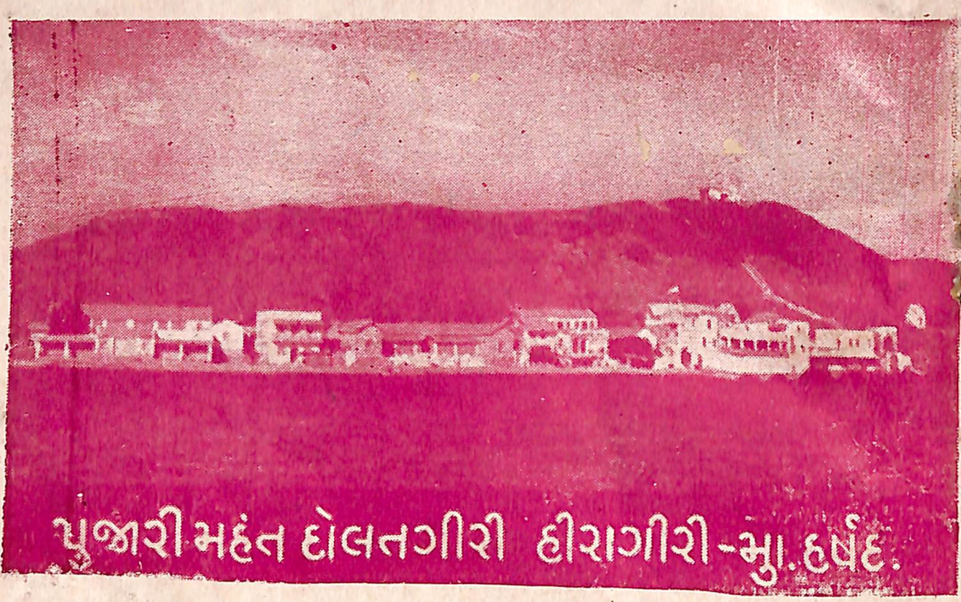

श्री हरसिद्धि माताजीनी आरतीं

ॐ जय जय हरसिद्धि, मा जय जय हरसिद्धि; अणुए अणुमां व्यापक (२) मा तूं रिद्धिसिद्धि
ॐ जय जय हरसिद्धि

ॐ परात्पर ने सचराचर, अजर अमर माता (२) मा असुर-संहारक शक्ति (२) सुर शांती दाता;
ॐ जय जय०

त्वम् दुर्गा महाकाली, अंबा सुखदायी (२) मा नारायणी महालक्ष्मी (२) मा बहुचर वरदायी;
ॐ जय जय०

ब्रह्मा विष्णु महेश्वर देव अने ज्ञाता (२) मा मुनिवर मोहित थई ने (२) मा, जय जय उच्चरता,
ॐ जय जय०

कृष्णगिरिमां प्रकट्यां, मा तारक रूपे (२) मा चिदानंद आनंदे (२) मा तुजने वंदे;
ॐ जय जय०

बे हजार ने पांचे, पुनः प्राकट्यां माजी (२) मा मुखडुं सुंदर पेखी (२) भक्तो थाय राजी;
ॐ जय जय०

देवी दीव्य स्वरूप, सूवर्णमय कांती (२) मा भक्तजनोना हृदये (२) व्यापे चिर शांति
ॐ जय जय०

आधि व्याधि उपाधि दुःख सघळां कापो (२) मा ज्ञान-दीपक प्रगटावी (२) मा, अविचळ पद आपो
ॐ जय जय०

पूर्ण प्रेमे आ आरती, जे प्रेम धरी गाशे (२) मा कहे चिदानंद स्वामी (२) निर्भय थई जाशे.
ॐ जय जय हरसिद्धि

श्री महालक्ष्मी प्रिंटरी, ७३, ट्रीनीटी स्ट्रीट, धोबीतलाव, बम्बई—२.